इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए 336

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

पत्र व्यवहार का पता

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस, एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल–462047

फोन : 0755-2700466 (डेस्क), 2700401 (रिसेप्शन)

e-mail : electronikiaisect@gmail.com, website : www.electroniki.com वार्षिक शुल्क : 480/- (यह अंक 40/-)

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। पत्रिका के भीतर उपयोग किये गये गूगल से साभार हैं। उनसे संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का निबटारा भोपाल अदालत में किया जायेगा।

स्वामी, आईसेक्ट लिमिटेड के लिये प्रकाशक व मुद्रक सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा आईसेक्ट पब्लिकेशन्स, 25 ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित व आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- संतोष चौबे।

अनुक्रम

मेरी जीवन शैली न तो उधार की है और न ही पराधीन। वह मेरी अपनी है। मैं स्वतंत्र पैदा हुआ हूँ और स्वतंत्र जीना चाहता हूँ।

मैंने मुफ़लिसी भी देखी है और समृद्धि भी। जीवन के इस उतार-चढ़ाव में मेरी साधना की लौ अकम्प जलती रही है और जलती रहेगी। मैं अपने लेखन से संतुष्ट हूँ। फिर भी एक रचनाकार होने के नाते एक बौद्धिक एषणा अभी भी बाकी है कि मैं लेखन की आसमानी बुलंदियों को छू सकूँ। मेरी यह मान्यता है कि 'है' की अपेक्षा 'नहीं है' का बोध सर्जना के कपाट खोलता है, जो निरन्तर भरने के लिए है।

– शुकदेव प्रसाद

(जन्म : 24 अक्टूबर 1954 ● निधन : 24 मई 2022)
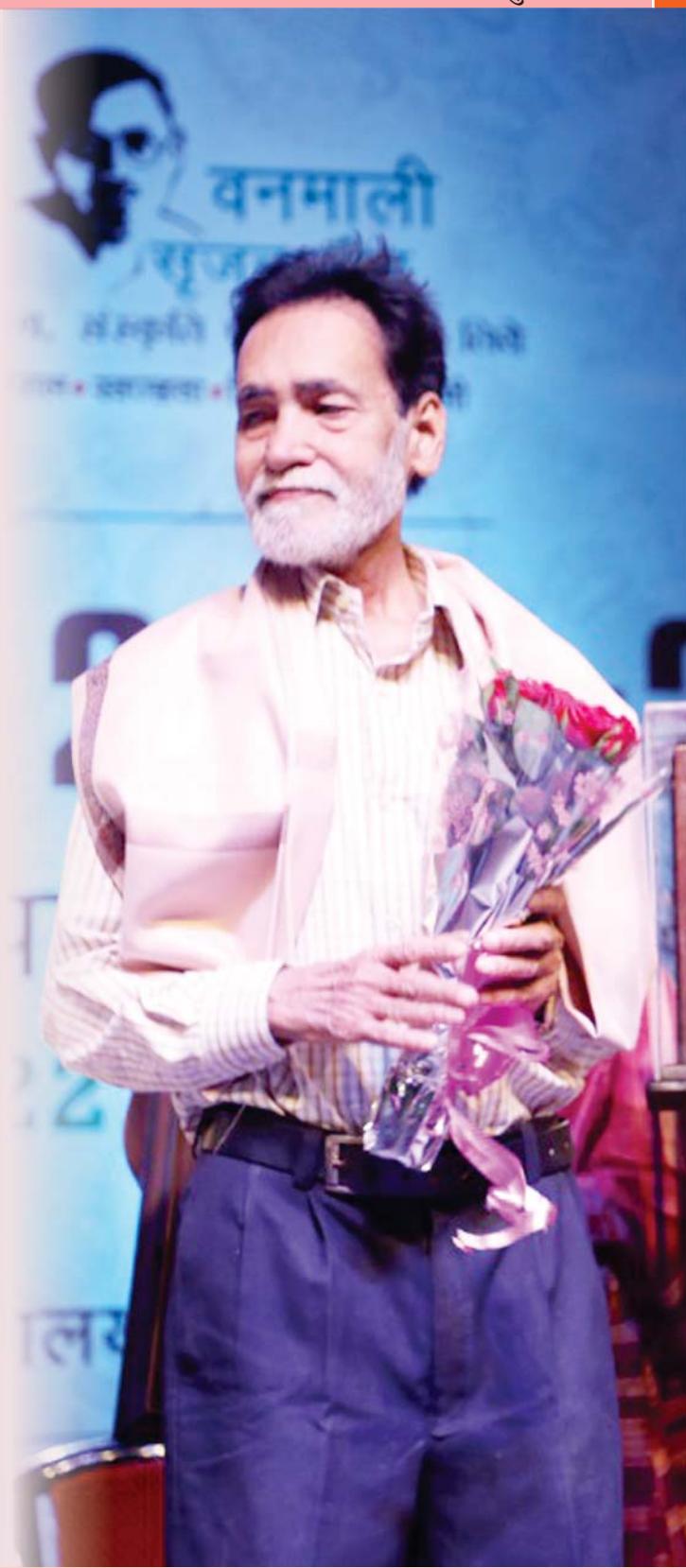
वे एक ज़िद के साथ सत्यान्वेषण करते थे

23 मई 2022 को विज्ञान के अप्रतिम लेखक शुकदेव प्रसाद ने इस भौतिक जगत को अलविदा कह दिया। अभी एक माह पूर्व 15-17 अप्रैल को 'वनमाली कथा सम्मान' में वे आए थे और उनकी गरिमामय उपस्थिति में उन्हीं के द्वारा छह खंडों में संपादित 'विज्ञान कथा कोश' का विमोचन हुआ था। इस बार 'वनमाली कथा सम्मान' समारोह में 'विज्ञान कथा सम्मान' को भी सम्मिलित किया गया था और पहला 'विज्ञान कथा सम्मान' हमारे-उनके पुराने मित्र विज्ञान लेखक देवेन्द्र मेवाड़ी को दिया गया। वे हमारे इस उपक्रम से उत्साहित थे और विज्ञान संचार संबंधी हमारी भविष्य की योजनाओं में सहभागी बनने को वचनबद्ध थे। उन्होंने 'विज्ञान कथा कोश' के पश्चात 'नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों' का एक वृहद कोश तैयार करने की रूपरेखा बना रखी थी। किसी भी काम की रूपरेखा बनाना और फिर उसमें जुट जाना, उनकी फितरत थी। वे घंटों, दिनों, महीनों नहीं वर्षों एक ही काम को बगैर ऊबे कर सकते थे। इस सर्जना-प्रक्रिया में वे खांटी भारतीय नागरिक थे।

अपनी पहली मुलाकात में वे एक आम भारतीय की तरह दिखाई देते थे। चेहरे पर हल्की सी दाढ़ी, तीक्ष्ण आँखें जो कभी आपको भेदती सी लगेंगी और कभी एक दार्शनिक दूरी पर स्थित दिखेंगी। काफी देर तक चुप रहने के बाद वे अचानक किसी किस्से को कहना शुरू करेंगे, और परत दर परत उसे खोलते जाएँगे। बीच-बीच में एक उन्मुक्त ठहाका जो आपको उनके पास ले जायेगा। फिर जाते समय, एक बार मिलने का वादा, आपके दिल में भी ये हसरत छोड़ जाएगा कि इस आदमी से और बात की जानी चाहिए।

शुकदेव प्रसाद की सही पहचान किसी विज्ञान संगोष्ठी में हो सकती थी। वे जिस गहराई से विषय में प्रवेश करते थे और जिस ज़िद के साथ सत्यान्वेषण करते थे वह उनकी मानसिक बुनावट को दर्शाता था। तथ्यों और वैज्ञानिक स्थापनाओं में घालमेल उन्हें बिलकुल भी पसंद नहीं था, और उन पर हो रही बहस में वे किसी भी दूरी तक जा सकते थे। विज्ञान लेखन को विज्ञान सम्मत होना चाहिए। इस पर सदा उनका ज़ोर रहता।

शुकदेव प्रसाद से मेरी पहली मुलाक़ात विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के पुरस्कार समारोह में सन 1987-88 के आसपास हुई थी, जहाँ उनकी किसी किताब और मेरी किताब दोनों को ही पुरस्कृत किया जाने वाला था। धीरे-धीरे मैंने उनके काम को जाना। उनके बायोडेटा से गुज़रते हुए आपको आश्चर्य होता है कि एक आदमी भला इतना सारा काम कैसे कर सकता है? उन्होंने चार विषयों में स्नातकोत्तर शिक्षा तो प्राप्त की ही है, लगभग तीन हजार से ऊपर विज्ञान आलेख लिखे और प्रकाशित किए। शताधिक पुस्तकों का लेखन किया तथा 'विज्ञान भारती', 'वैचारिकी' एवं 'पर्यावरण दर्शन' पत्रिकाओं का कुशल संपादन करते रहे। उन्हें प्राप्त पुरस्कारों की शृंखला बहुत लंबी है, और शायद सभी प्रमुख पुरस्कार उन्हें मिले हैं। इनमें सोवियत लैंड नेहरू पुरुस्कार, विक्रम साराभाई पुरस्कार, केन्द्रीय हिन्द संस्थान का डॉ.आत्माराम पुरस्कार, डॉ. संपूर्णानंद पुरस्कार आदि को प्रमुखता से रेखांकित किया जा सकता है।

बाद में 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के नियमित लेखक के रूप में उन्होंने आईसेक्ट परिवार में भी अपनी जगह बना ली। उन्होंने चार खंडों में भारतीय विज्ञान कथाओं, विश्व विज्ञान कथाओं तथा बाल विज्ञान कथाओं का विस्तृत संग्रह प्रस्तुत किया है जो आपको एकबारगी ही हिन्दी में प्रकाशित भारतीय एवं वैश्विक विज्ञान गल्प से परिचित कराता है। जितनी महत्वपूर्ण इन संग्रहों में प्रकाशित कथाएं हैं, उतनी ही महत्वपूर्ण इन खंडों की भूमिकाएं भी हैं। इन भूमिकाओं को पढ़ते हुए आपको शुकदेव प्रसाद की दृष्टि का पता चलता है। विज्ञान साहित्य को अच्छे समीक्षक और पर्याप्त समालोचक न मिलने पर रोष प्रगट करते हुए वे कहते हैं 'अस्सी आदि से विज्ञान कथाएं लिखी तो बहुत तेजी से जा रही हैं लेकिन अभी तक यह विधा स्थापित क्यों नहीं हो सकी यह एक विचारणीय प्रश्न है। वास्तव में हुआ यह कि अभी तक विज्ञान कथाओं पर टिप्पणी लिखते समय या उनका लेख-जोखा प्रस्तुत करते समय परम्परा यह रही है कि अब तक प्रकाशित कथाओं अथवा उपन्यासों आदि की सूची देकर और कुछ एक नामों का प्रशस्ति वाचन करके हम अपनी इतिश्री समझ लेते रहे हैं और इस बात पर प्रमुदित होते हैं कि विज्ञान गल्प साहित्य का भंडार कितना समृद्ध हो चला है। न ही उन पर समीक्षात्मक लेखन न होने के कारण यह दुर्दशा हुई है।'

तो अच्छा विज्ञान कथा लेखन के लिए क्या किया जाना चाहिए? यहाँ भी शुकदेव प्रसाद हमारी सहायता करते हैं – 'विज्ञान गल्प लेखन के लिए विज्ञान सिद्धि और रस सिद्धि दोनों आवश्यक हैं। कथाकार कथा तो कल्पित कर सकता है लेकिन पहले वह विज्ञान की जटिलताओं को समझे फिर कथा की बुनावट करे। इसकी वह जहमत नहीं पालना चाहता और विशुद्ध विज्ञानी कथा ही क्या जिसमें लालित्य न हो, जिसमें पाठकों को अपने मोहपाश में आबद्ध करने की क्षमता न हो।' विज्ञान साहित्य तथा विज्ञान कथा लेखन के क्षेत्र में शुकदेव प्रसाद एक ऐसे विरल व्यक्तित्व के रूप में सामने आते हैं जिसके पास सहज भाषा भी है और वैज्ञानिक चेतना भी, सामाजिक दृष्टि भी है और विषयों को गहराई से जाँचने की ज़िद भी। कोई आश्चर्य नहीं कि हिन्दी में विज्ञान लेखन के क्षेत्र में उन्होंने अपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया है।

हमारे देश को भारतीय भाषाओं में विज्ञान, साहित्य और वैज्ञानिक चेतना को समृद्ध करने वाले लेखन की बड़े पैमाने पर जरूरत है। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि मीडिया में तंत्रमंत्र और कपोल कल्पनाओं को जितना स्थान मिलता है विज्ञान आधारित लेखन को उसका दस प्रतिशत भी शायद नहीं मिलता है। विज्ञान और वैज्ञानिक चेतना के पक्ष में हमारे देश में एक पूरा का पूरा आंदोलन खड़ा हुआ था। उसे कमजोर होने से बचाया जाना चाहिए। शुकदेव प्रसाद ने यह काम बखूबी किया।

उनकी प्रतिबद्धता थी कि 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के वे नियमित लेखक और स्तंभकार रहे। उन्होंने हमारे लिए छह खंडों में विज्ञान कथा कोश का संपादन करने के साथ-साथ भारतीय विज्ञान परंपरा को अलग-अलग कालखंडों में बाँटकर उस पर शृंखलाबद्ध काम किया। इस कड़ी में प्राचीन विज्ञान परंपरा के अंतर्गत उनके लेख हिन्दी में विज्ञान साहित्य का विहंगावलोकन, सैंधव सभ्यता में विज्ञान के उत्कर्ष, रसायन विज्ञान की परंपरा, प्राचीन भारत में धातु प्रयोग और धातु कर्म, स्वर्ण निर्माण की रहस्मयी विद्या, कोपरनिकस नहीं आर्यभट, प्रख्यात रसाचार्य नागार्जुन और उनका युग, शल्य चिकित्सा के जनक धनवंतरि, महर्षि कणाद का परमाणु दर्शन आदि उल्लेखनीय हैं। मध्यकालीन परंपरा में- मध्यकालीन भारतीय विज्ञान का अंधयुग, जयसिंह और उनकी वेधशालाएँ, जहाँगीर : प्रकृति विज्ञान का कुशल अध्येता जैसे लेखों के माध्यम से उन्होंने मध्यकालीन या मुगलकालीन विज्ञान के विकास के अछूते पक्ष को उजागर किया। इसी तरह आधुनिक विज्ञान परंपरा में भारतीय विज्ञान का पुनर्जारण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी : गाँधी की दृष्टि में, नेहरू का उदय और भारतीय विज्ञान पर उसका प्रभाव जैसे लेखों के माध्यम से नवजागरण काल को रेखांकित किया। उन्होंने भारतीय परमाणु कार्यक्रम, अंतरिक्ष, पर्यावरण, जीव-जंतु-जगत आदि पर भी क्रमबद्ध तरीके से काम किया।

शुकदेव प्रसाद पर केन्द्रित इस अंक को हमने पाँच खंड़ों में विभाजित किया है, यथा – मूल्यांकन, स्मृतिरेख, कविता : प्रसाद, शुकदेव प्रसाद की विज्ञान कथाएँ और शुकदेव प्रसाद के आलेख। शुकदेव प्रसाद के कृतित्व और व्यक्तित्व पर वरिष्ठ लेखकों और मित्रों के वक्तव्य भी हमने यहाँ शामिल किए हैं। उन्हें लिखे अज्ञेय, गुणाकर मुळे, डॉ. नगेन्द्र के पत्र भी हमने साभार प्रकाशित किए हैं। इस पाठ्य सामग्री से गुज़रते हुए पाठक शुकदेव प्रसाद जी को और अधिक निकटता से जान सकेंगे।

संपादक

सम्मान

15 अप्रैल 2022 'वनमाली सम्मान समारोह' में वरिष्ठ विज्ञान लेखक श्री शुकदेव प्रसाद को सम्मानित किया गया। इस अवसर पर उनके द्वारा छह खण्डों में संपादित 'विज्ञान कथा कोश' का विमोचन हुआ। श्री शुकदेव प्रसाद 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' परिवार के आत्मीय सदस्य थे। हमारे द्वारा आयोजित वैज्ञानिक कार्यक्रमों में उनकी गरिमामय उपस्थिति रहती थी। श्री शुकदेव प्रसाद को सम्मानित करते कवि-कथाकार और विज्ञानकर्मी श्री संतोष चौबे, प्रख्यात आलोचक प्रो. धनंजय वर्मा और श्री अनिल जोशी।

उद्‌बोधन

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' आईसेक्ट, भोपाल में एक संगोष्ठी में श्री शुकदेव जी का उद्‌बोधन। उनके दाहिनी ओर बैठे हैं माखनलाल चतुर्वेदी विश्वविद्यालय, भोपाल के पत्रकारिता विभाग के अध्यक्ष डॉ. पुष्पेंद्र पाल सिंह, उनके बाएं, क्रमशः इसरो से सेवा निवृत्त डिजाइन इंजीनियर डॉ. कालीशंकर शुक्ला, विज्ञान लेखक डॉ. दुर्गादत्त ओझा और मत्स्य विज्ञानी डॉ. अरविंद मिश्र।

शुकदेव प्रसाद : एक नज़र
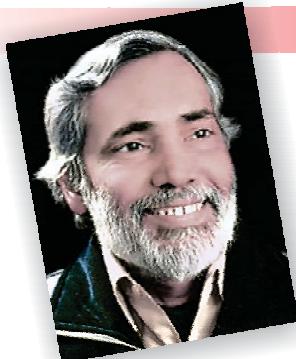
जन्म : 24 अक्टूबर 1954 बस्ती (अब सिद्धार्थ नगर) में जन्म। **शिक्षा :** एम.एससी.(वनस्पति शास्त्र), एम.ए.(हिन्दी), एम.ए.(अर्थशास्त्र), एम.ए.(प्राचीन भारतीय इतिहस)। हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से 'साहित्य महोपाध्याय' (डाक्टोरेट) की मानद उपाधि, विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, गांधीनगर से विद्या वाचस्पति (डॉक्टोरेट) की मानद उपाधि।

कृतियाँ : बड़ों की बातें, जैव प्रौद्योगिकी के विविध आयाम, एड्स : तथ्य एवं भ्रांतियाँ, हिमीभूत और अन्य विज्ञान कथाएँ, भारत एवं शेष नाभिकीय विश्व, परमाणुओं की छाया में, वैज्ञानिक निबंधावली, वैज्ञानिक निबंध, यानों की कहानी, तृतीय विश्व एवं भारत की विकासात्मक समस्याएं, विज्ञान हमारे जीवन में, परिवहन की कहानी, रसायन हमारे जीवन में, विश्व प्रसिद्ध प्रेरक प्रसंग, विश्व प्रसिद्ध अलौकिक रहस्य, हमारे आस-पास विज्ञान, प्रकृति विजय का रोमांच, World Famous Anecdotes, World Famous Supernatural Mystries, भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, ऊर्जा संसाधनों की खोज में, विमानन के सौ वर्ष, अंतरिक्ष में स्काईलैब, अंतरिक्ष में भारत, अंतरिक्ष में विश्व, अंतरिक्ष में भारत-सोवियत मैत्री, अंतरिक्ष में भारतीय उपग्रह, प्रदूषण तेरे रूप अनेक, हमारा बदलता पर्यावरण, पर्यावरण संरक्षण, पानी भी दूषित हो चला, दूषित हवा के साथ-साथ, क्या हैं पौधों के उपकार?, कितना शोर चारों ओर?, भारतीय प्रक्षेपास्त्रों के जनक : डॉ.ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, वैज्ञानिकों की बातें, वैज्ञानिकों का बचपन, आइंस्टाइन : एक विज्ञानी, एक मानव, वैज्ञानिकों के रोचक और प्रेरक प्रसंग, प्राचीन भारत के विज्ञान रत्न, आधुनिक भारत के विज्ञान रत्न, विश्व के विज्ञान रत्न, भारत के नोबेल वैज्ञानिक, वैज्ञानिकों की प्रेरक कहानियाँ, वैज्ञानिकों की रोचक कहानियाँ, महिलाएँ विज्ञान के क्षेत्र की, विज्ञान की विभूतियाँ, वैज्ञानिकों के सरस प्रसंग, चंद्रशेखर वेंकट रामन्, कल्पना चावला : भारत की प्रथम महिला अंतरिक्ष यात्री, रोचक जंतुओं की दुनिया, ये ध्रुववासी जनम के, न उड़ पाने वाले पंछी, पौधों का रोचक संसार, जीवों का आश्चर्य लोक, पौधों का आश्चर्य लोक, धरती के अनोखे स्वामी : डाइनोसॉर, रोचक बिल्ली परिवार, आर्थिक महत्व के पादप, अनजाने में हुए आविष्कार, घड़ियाँ : कल और आज, कम्प्यूटर हमारे जीवन में, अवैज्ञानिकों द्वारा हुए आविष्कार, कम्प्यूटर यानी मशीनी दिमाग, दसवें ग्रह की खोज, जल के यान, थल के यान, नभ के यान, हवाई जहाज की कहानी, जेट यानों की कहानी, राकेट की कहानी (दो खण्ड), समुद्री जहाज की कहानी, साइकिल-मोटर साइकिल की कहानी (दो खण्ड), मोटर की कहानी, रेलगाड़ी की कहानी (दो खण्ड), हेलीकाप्टर की कहानी (दो खण्ड), भारतीय परमाणु परीक्षण, भारतीय प्रक्षेपास्त्रों की कहानी, तथ्वों का यूं नाम पड़ा, पानी (दो खण्ड), हवा, हवा की बातें, हमारा सौर परिवार (दो खण्ड), चमत्कारी बिजली (दो खण्ड), करामाती चुंबक, पानी है अनमोल, कैसा है हमारा वायुमंडल, विज्ञान कथाएं : उद्‌भव, परंपरा एवं विकास, प्रतिष्ठ भारतीय वैज्ञानिक, आविष्कारों की सदी, नोबेल पुरस्कार समादृत वैज्ञानिक (तीन खण्ड), विज्ञान के नए अक्षांश।

संपादन : विज्ञान भारती, विज्ञान वैचारिकी, पर्यावरण दर्शन (पत्रिकाएँ)। **ग्रंथ/संचयन :** विज्ञान कथा कोश (छह खण्डों में), सामान्य विज्ञान व प्रौद्योगिकी, भावी सदियों की विज्ञान कथाएँ, नेहरू और विज्ञान, समसामयिक निबंध सौरभ, पर्यावरण और हम, बीसवीं शती का विज्ञान विश्वकोश (चार खण्डों में)

पुरस्कार/सम्मान : साइंटिस्ट ऑफ टुमारो एवार्ड, बाल-साहित्य पुरस्कार, सर्टिफिकेट ऑफ मेरिट, युवा लेखन पुरस्कार, विक्रम साराभाई पुरस्कार, डॉ. संपूर्णानंद नामित पुरस्कार, राष्ट्रीय बाल साहित्य पुरस्कार, डॉ.होमी भाभा पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू एवार्ड, विज्ञान और प्रौद्योगिकी पुरस्कार, कौटिल्य पुरस्कार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी पुरस्कार, डॉ. मेघनाद साहा पुरस्कार,साहित्य महोपाध्याय, जगपति चतुर्वेदी बाल-विज्ञान लेखन सम्मान, चमेली देवी महेन्द्र स्मृति पुरस्कार, डी.आर.डी.ओ. राजभाषा, डॉ. आत्माराम, डॉ. संपूर्णानंद, अनुशंसा, समता सम्मान, विज्ञान वाचस्पति, हिंदी स्वर्ण जयंती, सर्जना, राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान, अवध भूषण, भारतीय साहित्य सुधा-रत्न, डॉ.सी.वी.रामन् तकनीकी लेखन, विद्यावाचस्पति।

निधन : 23 मई 2022 इलाहाबाद में।
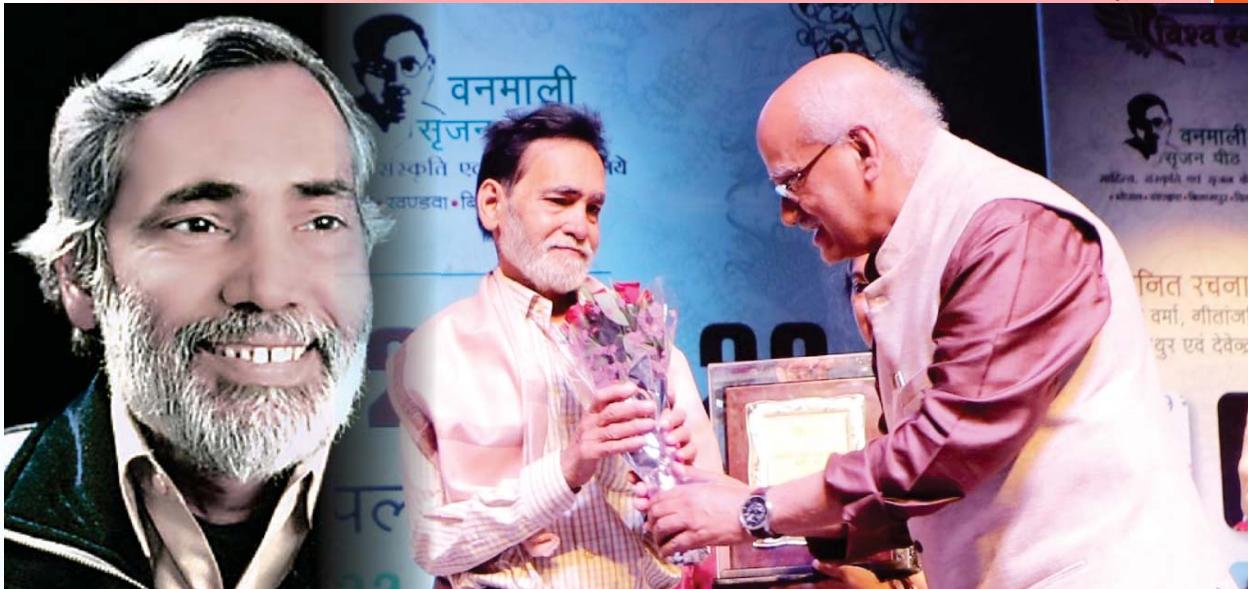
संगम तट का वह मसिजीवी साथी

देवेन्द्र मेवाड़ी

माह अप्रैल 2022। पलाश होटल, भोपाल। वनमाली कथा सम्मान समारोह में भाग लेने के लिए 14 अप्रैल को भोपाल पहुँच गया था। अगले दिन रवीन्द्र भवन में प्रतिष्ठित वनमाली कथा सम्मान-2021 प्रदान किए जाने थे जिनमें इस बार पहला 'वनमाली विज्ञान कथा सम्मान' भी दिया जाना था। साहित्य और विज्ञान के संग-साथ की यह पहल वनमाली सृजन पीठ के अभिनव सोच की उपज थी। साहित्य के इस मंच पर विज्ञान कथा साहित्य की एक और अहम उपस्थिति दर्ज़ की जानी थी। वह थी- आईसेक्ट पब्लिकेशन से छह खंडों में सद्यः प्रकाशित हिंदी के महत्वपूर्ण 'विज्ञान कथा कोश' का लोकार्पण, जिसका प्रधान संपादक तथा कथाकार-उपन्यासकार श्री संतोष चौबे के मार्गदर्शन में बेहद परिश्रम से संकलन और संपादन जाने-माने विज्ञान लेखक श्री शुकदेव प्रसाद ने किया था। हर्ष की बात यह थी कि इस कोश के लोकार्पण के अवसर पर प्रयागराज से श्री शुकदेव प्रसाद की उपस्थिति सुनिश्चित कर ली गई थी। यानी, प्रिय साथी विज्ञान लेखक शुकदेव से इस बार फिर कई साल बाद भेंट होने वाली थी। दिन में टैगोर विश्वविद्यालय के स्टूडियो में व्यस्तता रही। देर शाम होटल में लौटा।

सुबह सात-साढ़े सात बजे कमरे में फोन की घंटी बजी। फोन उठाया, शुकदेव थे।

उन्होंने पूछा, ''आ चुके हो? कमरा नंबर क्या है?''

मैंने बताया, ''पहली मंज़िल पर हूँ, कमरा नंबर 214।''

वे बोले, ''मैं वहाँ आ नहीं सकता। डॉक्टर ने सीढ़ियाँ चढ़ने को मना किया है। आप आ जाओ।''

''अभी आता हूँ,'' कह कर मैंने उनके कमरे का नंबर पूछ लिया-भूतल पर कमरा नं. 110। फिर मिलने गया। कमरे में जाते ही उन्हें देखकर आघात-सा लगा। वे बहुत कमजोर हो चुके थे। आधी लुंगी और बुश शर्ट पहने थे। मैंने हाथ मिलाया और सामने कुर्सी पर बैठ गया। कमजोर कह कर मैं उन्हें और कमजोर नहीं करना चाहता था। इसलिए उत्साह की बात की- आज विज्ञान कथा कोश का लोकार्पण होगा। मित्र, आपने यह एक बड़ा काम कर दिया है। आपकी मेहनत और लगन को सलाम!''

देवेन्द्र मेवाड़ी (जन्म 1944) वरिष्ठ विज्ञान साहित्यकार हैं। ये साहित्य की कलम से विज्ञान लिखते हैं। इन्होंने वनस्पति विज्ञान में एम. एससी., हिंदी साहित्य में एम. ए. और पत्रकारिता में पी.जी. डिप्लोमा किया है। श्री मेवाड़ी ने प्रिंट मीडिया के साथ-साथ रेडियो, टेलीविजन तथा फिल्म आदि माध्यमों के लिए भी विज्ञान लिखा है। रेडियो विज्ञान नाटक लिखे हैं। इनकी तीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें मेरी प्रिय विज्ञान कथाएं, विज्ञाननामा, मेरी विज्ञान डायरी, नाटक- नाटक में विज्ञान, विज्ञान बारहमासा, विज्ञान की दुनिया, विज्ञान और हम आदि शामिल हैं। 'मेरी यादों का पहाड़', कथा कहो यायावर, स्मृति वन में भटकते हुए इनके स्मृति आख्यान है। ये विभिन्न प्रदेशों के दूर-दराज इलाकों में जाकर लगभग एक लाख बच्चों तथा बड़ों को विज्ञान की कहानियाँ सुना चुके हैं। इन्हें अनेक राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है।

सुन कर उन्हें खुशी हुई। बोले, ''यार, बहुत मेहनत की इस काम में। किसी भी माई के लाल के वश का नहीं था यह काम। किसी के पास नहीं होगा इतनी विज्ञान कथाओं का संकलन। सन् 1960-70 से कहानियाँ जमा करता आ रहा हूँ।''

''जानता हूँ, तुम्हारे नायाब ख़जाने से निकले हैं विज्ञान कथाओं के ये मोती। धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, नवनीत, कादंबिनी और न जाने कितनी पत्र-पत्रिकाओं से जमा करते आ रहे हो वर्षों से।''

''कई लोगों से कहानियाँ मंगाईं भी। कुछ लोगों से तो कई-कई बार कहना पड़ा। खैर, किसी तरह यह काम हो गया है। यही मेरा आखिरी काम है।''

मैंने कहा, ''ऐसा क्यों बोल रहे हो, अभी तो तुम्हें बहुत काम करने हैं।''

''अरे यार थक गया हूँ अब। तबियत भी ठीक नहीं रहती। कल इलाहाबाद से यहाँ तक टैक्सी से आया हूँ। एक बार सोचा, जबलपुर में रुक जाऊँ लेकिन फिर हिम्मत करके चला ही आया। और जानते हो, जेब में एक पैसा नहीं। जो कुछ था सब रास्ते में खर्च हो गया। बताओ अब क्या करूँ?''

''यहाँ तो समारोह में बुलाए गए हो। सभी सुविधाएं मिलेंगी, कोई कमी नहीं होगी।''

मैंने कमरे में चारों ओर नज़र दौड़ाई। चीजें बिखरी हुई थीं। मेज पर तथा मेज के नीचे रात के खाने की प्लेटें पड़ी हुई थीं। उनमें खाना भी था जो उन्होंने खाया नहीं था। मैंने पूछा, ''यह खाना क्यों नहीं खाया?''

वे बोले, ''मन ही नहीं किया।'' उन्होंने पॉलीथीन की थैली में रखी तमाम दवाइयाँ दिखाईं और कहा, ''इतनी तो दवाइयाँ खानी पड़ती हैं।''

''लेकिन दवाइयाँ खाने के लिए तो भोजन जरूरी है।'' वे चुप रहे। तभी एक सेवक ने आकर उन्हें कुछ पकड़ाया जिसे उन्होंने धीरे से बगल में रख लिया। फिर उन्होंने पूछा, ''क्या सिगरेट भूल गए?''

सेवक ने कहा, ''नहीं साब, लाया हूँ ना,'' और जेब से सिगरेट का पैकेट तथा माचिस की डिब्बी निकाल कर उन्हें दी।

सेवक के जाने के बाद हम फिर 'विज्ञान कथा कोश' के बारे में बातें करने लगे। वे बोले, ''यार, जितना संभव हो सकता था मैंने कर दिया है। कोशिश की है कि कोई विज्ञान कथाकार न छूटे। जो कहानियाँ मुझे मिल ही नहीं पाईं, उनका क्या कर सकता हूँ।''

हम बातें कर ही रहे थे कि 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' और 'विज्ञान कथा कोश' के सह संपादक मोहन सगोरिया जी आ गए। वे विज्ञान कथा कोश के सभी खंड ले आए थे। शुकदेव जी ने उन सभी खंडों पर नज़र फेरी और फिर पहला खंड उठा कर पढ़ने लगे। मैंने भी विज्ञान कथा कोश पहली बार उन्हीं के कमरे में देखा। कुछ देर बातें करने के बाद हमने उनसे विदा ली और शाम को वनमाली विज्ञान कथा समारोह में मिलने का वायदा किया।

शाम को रवींद्र भवन के सभागार में भव्य सम्मान समारोह आयोजित किया गया था। समारोह में वनमाली सृजन पीठ के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री संतोष चौबे, अध्यक्ष श्री मुकेश वर्मा, समारोह की अध्यक्ष वरिष्ठ कथाकार श्रीमती ममता कालिया के साथ ही कथा सम्मानों से सम्मानित हो रहे सभी कथाकार उपस्थित थे। संतोष चौबे जी ने विज्ञान कथा कोश के बारे में बताते हुए इसके संपादक श्री शुकदेव प्रसाद को सम्मानित किया। मंच पर सभी साहित्यकारों ने विज्ञान कोश के सभी खंडों का लोकार्पण किया। श्री शुकदेव ने इस कार्य को मूर्त रूप देने के लिए संतोष चौबे जी

तथा आईसेक्ट संस्था के प्रति आभार व्यक्त किया।''

अगले दिन फिर श्री शुकदेव से भेंट हुई। हमने विज्ञान कथाओं पर चर्चा की। उन्होंने कहा, ''मेरा अगला काम नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों पर है। काम शुरू हो चुका है। कई वैज्ञानिकों पर लिख भी चुका हूँ। यह काम भी कई खंडों में प्रकाशित होगा। वे अपनी अस्वस्थता के बारे में भी बताते रहे लेकिन लगता नहीं था कि वे डाक्टर की सलाह के अनुसार परहेज कर रहे थे। वे कुछ निराश से लगते थे। बातचीत के बीच यह भी कहते रहे- मैंने अपना काम पूरा कर दिया है। अब तो जाना ही है।''

भोपाल से लौटने के बाद अति व्यस्तता के कारण साथी शुकदेव से फोन पर कोई बात न हो सकी। उनके कृशकाय शरीर को देखने के बाद से ही बार-बार उनका ध्यान आता। बीते हुए दौर की बातें याद आती रहीं... कुछ वर्ष पहले की ही तो बात है।

''हैलो?''

''हाँ बोल रहा हूँ!''

"हैलो....हाँ मेवाड़ी जी, शुकदेव बोल रहा हूँ। अरे यार 24 अक्टूबर को 58 साल का हो रहा हूँ। यार-दोस्त मान नहीं रहे हैं। ज़िद कर रहे हैं कि इस मौके पर एक पत्रिका मुझ पर विशेषांक छाप रही है। मैंने कहा, चलो जो मर्जी, करो। अब आप ही पुराने वरिष्ठ साथी हैं, आप भी कुछ लिख दीजिए। तारीफ वाला नहीं चाहता हूँ, कृतित्व पर लिखा जाए। सभी से यही कह रहा हूँ.....।"

बहुलिखित, बहुपठित और बहुपुरस्कृत विज्ञान लेखक साथी शुकदेव प्रसाद का इलाहाबाद (अब प्रयागराज) से फोन था। विगत तमाम वर्षों में उनसे व्यक्तिगत से कहीं अधिक फोन-मुलाकातें ही हुई थीं। उन श्रव्य मुलाकातों का कितना सार याद रहा है, यह याद करने की कोशिश करता हूँ। साथ ही उनकी भेंट की गई पुस्तकों को भी एक बार फिर पलट कर देखता हूँ।

उन्होंने पूछा, ''तो, कब तक भेजेंगे?''

"यार वही सोच रहा था कि क्या लिखूँ। फिर भी स्मृति को टटोलता हूँ। आपकी जो पुस्तकें मेरे पास हैं, उनके पन्ने एक बार फिर पलटता हूँ। दो-चार दिन दीजिए।"

"ठीक है। हो जाए तो मेल कर दीजिए। कई लोग लिख रहे हैं। पत्रिका के विशेषांक के अलावा इसे पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित किया जाएगा।"

"ठीक है, लिखता हूँ। जल्दी भेजूँगा। नमस्कार।"

"नमस्कार"

फोन रखने के बाद बैठा सोचता रहा कि हिंदी विज्ञान लेखन के आकाश पर जब गुणाकर मुळे और रमेश दत्त शर्मा जैसे सितारे दैदीप्यमान थे, तब अचानक किसी धूमकेतु की तरह युवा
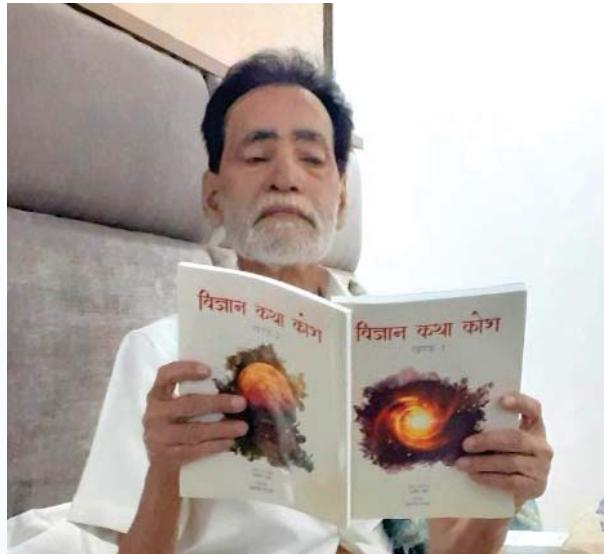
शाम को रवींद्र भवन के सभागार में भव्य सम्मान समारोह आयोजित किया गया था। समारोह में वनमाली सृजन पीठ के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री संतोष चौबे, अध्यक्ष श्री मुकेश वर्मा, समारोह की अध्यक्ष वरिष्ठ कथाकार श्रीमती ममता कालिया के साथ ही कथा सम्मानों से सम्मानित हो रहे सभी कथाकार उपस्थित थे। संतोष चौबे जी ने विज्ञान कथा कोश के बारे में बताते हुए इसके संपादक श्री शुकदेव प्रसाद को सम्मानित किया।

शुकदेव का आगमन हुआ था जिसने विज्ञान लेखन के आसमान पर अपने बहुविध लेखन की छटा बिखेर दी थी। यह देख कर हैरानी होती थी कि एक अकेला व्यक्ति कितने जीवट के साथ लगातार विज्ञान लिख सकता है। तब कई लोग केवल पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में लिख रहे थे जबकि शुकदेव पत्र-पत्रिकाओं में लिखने के साथ-साथ उसी लगन और मेहनत से अहर्निश न केवल पुस्तक लेखन बल्कि विज्ञान की पत्रिकाओं के संपादन और वैज्ञानिक संगोष्ठियों के सफल आयोजनों में भी जुटे हुए थे।

शुकदेव प्रसाद से मेरा पहला पत्र-संवाद वर्ष 1978 की गर्मियों में हुआ था जब वे जोर-शोर से एक नई विज्ञान पत्रिका 'विज्ञान भारती' के प्रकाशन की तैयारियाँ कर रहे थे। यह उन्हीं का सम्पर्क, सौजन्य और सद्भाव था कि इस पत्रिका के परामर्शदाता के रूप में उन्हें प्रो. फूलदेव सहाय, स्वामी (डॉ.) सत्य प्रकाश, डॉ. आत्माराम, प्रो. दिव्य दर्शन पंत, डॉ. शिव गोपाल मिश्र और श्री ठाकुर प्रसाद सिंह जैसे मनीषियों की छाँव मिली। प्रवेशांक के आत्म निवेदन में साथी शुकदेव ने 'विज्ञान भारती' का लक्ष्य स्पष्ट करते हुए लिखा था, "विज्ञान भारती के प्रकाशन से हिंदी विज्ञान पत्रकारिता में एक स्वस्थ परंपरा की शुरूआत हो, इसके लिए हर संभव प्रयत्न करने को हम

कृत-संकल्प हैं। हिंदी के वैज्ञानिक साहित्य के अभाव को पूरा करने की दिशा में हमारा तनिक भी योगदान रहा, तो हम अपने प्रयास को सफल समझेंगे।"

'विज्ञान भारती' के उस प्रवेशांक में विज्ञान कथाकार कैलाश साह की विज्ञान कथा 'प्रलय के बाद' प्रकाशित हुई थी। मसिजीवी लेखक-संपादक शुकदेव प्रसाद ने अपने ही श्रम से अर्जित पूंजी के बल पर 'विज्ञान भारती' को लगभग पाँच वर्ष तक जिलाए रखा। 'अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष' में प्रकाशित पत्रिका के बाल-विज्ञान अंक में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के बचपन की झांकियां प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा, "तुम्हें पता लगेगा कि वे सब कैसे साधारण स्तर से उठ कर इतिहास पुरुष हुए, अपने आविष्कारों से उन्होंने युग का रुख मोड़ा और नई राहें बनाईं। तुम बच्चों में कितने आइंस्टाइन, रामन्, रामानुजन, भाभा, गांधी, टैगोर छिपे हैं, कौन जानता है? महान पुरुषों के जीवन से तुम्हें शिक्षा-प्रेरणा लेनी चाहिए। हमें आशा है कि अपनी प्रतिभा, लगन से तुम ऐसा कुछ कर दिखाओगे कि आने वाला कल हसरत की निगाह से तुम्हें देख सके...। तुम भी किसी राह के दीप बन जाओ, भटके-भूलों को राह दिखाओ, माँ और माटी के सच्चे सपूत कहलाओ!"

श्री शुकदेव प्रसाद ने अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा विज्ञान लेखन पर केन्द्रित कर दी थी। मैं अक्सर हैरान होता था कि एक व्यक्ति छात्र जीवन में और फिर उस जीवन से स्वतंत्र लेखन के मुक्ताकाश में उड़ान भर कर नौकरी के पाश में बंधे बिना भी कितना कुछ कर सकता है! कितनी उपलब्धियाँ हासिल कर सकता है! सन् 1980 के दशक के अंत तक वे लगभग 2000 लेख और 60 पुस्तकें लिख चुके थे। विज्ञान लेखन के पुरस्कार स्वयं उन्हें सम्मानित करने के लिए खोज रहे थे। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान उन्हें चार बार पुरस्कृत कर चुका था। वे प्रतिष्ठित सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, राष्ट्रीय बाल साहित्य पुरस्कार, डॉ. होमी भाभा पुरस्कार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी पुरस्कारों से नवाजे जा चुके थे। मात्र 35 वर्ष की छोटी-सी उम्र में विज्ञान लेखन के उनके इतने कीर्तिमान और इतनी उपलब्धियाँ सचमुच हैरान कर देती थीं।

शुकदेव प्रसाद की सरल-सहज और प्रेरक भाषा का यह एक छोटा-सा नमूना है।

सामान्य कद-काठी के इस इंसान के भीतर न जाने कितनी रचनात्मक ऊर्जा भरी थी कि यह अहर्निश लिखता गया और अपनी रचनाओं से सत्तर के दशक के उत्तरार्ध से लेकर अगले लगभग बीस वर्षों तक देश की सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में छा गया।

मैं पंतनगर से लखनऊ पहुँचा। वे नौकरी में मेरे बेहद व्यस्त वर्ष थे। वहाँ रहते हुए 'अमृत प्रभात' के रविवासरीय संस्करण में विज्ञान के लेख लिखता रहा और आकाशवाणी व दूरदर्शन, लखनऊ पर भी कार्यक्रम देता रहा। उस आपाधापी में साथी शुकदेव प्रसाद से कोई संवाद तो नहीं हुआ लेकिन लखनऊ प्रवास के उन सवा छह वर्षों में उनका लेखन शिद्दत से उनकी मौजूदगी महसूस कराता रहा।

श्री शुकदेव प्रसाद ने अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा विज्ञान लेखन पर केन्द्रित कर दी थी। मैं अक्सर हैरान होता था कि एक व्यक्ति छात्र जीवन में और फिर उस जीवन से स्वतंत्र लेखन के मुक्ताकाश में उड़ान भर कर नौकरी के पाश में बंधे बिना भी कितना कुछ कर सकता है! कितनी उपलब्धियाँ हासिल कर सकता है! सन् 1980 के दशक के अंत तक वे लगभग 2000 लेख और 60 पुस्तकें लिख चुके थे। विज्ञान लेखन के पुरस्कार स्वयं उन्हें सम्मानित करने के लिए खोज रहे थे। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान उन्हें चार बार पुरस्कृत कर चुका था। वे प्रतिष्ठित सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, राष्ट्रीय बाल साहित्य पुरस्कार, डॉ. होमी भाभा पुरस्कार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी पुरस्कारों से नवाजे जा चुके थे। मात्र 35 वर्ष की छोटी-सी उम्र में विज्ञान लेखन के उनके इतने कीर्तिमान और इतनी उपलब्धियाँ सचमुच हैरान कर देती थीं। साथ ही, यह हिम्मत भी बंधाती थी कि हिंदी में विज्ञान लेखन के बूते पर भी सम्मान के साथ जीवन-यापन किया जा सकता है। उन्होंने केवल मसिजीवी रह कर आत्मनिर्भर होने का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके इस उदाहरण ने मुझे नौकरी की अस्त-व्यस्तताओं में भी सदा यह हिम्मत दी कि जरूरत पड़ने पर हम भी विज्ञान लेखन के बल पर जी सकते हैं।

मैं लखनऊ से तबादले के बाद दिल्ली आ गया तो 18 सितंबर 1990 को एक दिन अचानक उनका फोन मिला...।

"हैलो! अरे लखनऊ से आप दिल्ली आ गए, मुझे बताया भी नहीं। चिट्ठी ही भेज देते। कब आए?"

"दो वर्ष हो गए।"

"बताओ! मैं आ रहा हूँ मिलने। पता बताओ।"

मैंने भीखाएजी कामा प्लेस में अपने ऑफिस का पता बताया। और, जल्दी ही लिख्खाड़ शुकदेव प्रसाद हाजिर हो गए। पहली बार रू-ब-रू हुए। तमाम बातें हुईं। उन्होंने अपनी दो संपादित पुस्तकें भेंट कीं : 'नेहरू और विज्ञान' तथा 'पर्यावरण और हम'। नेहरू और विज्ञान पर हिंदी में आज भी यह अपनी तरह की एकमात्र सुसंपादित संदर्भ पुस्तक है जिसमें अपने-अपने क्षेत्र के जाने-माने विद्वानों की रचनाओं का संकलन किया गया है। अपने संपादकीय प्रतिवेदन में श्री शुकदेव ने जवाहर लाल नेहरू के लिए लिखा था, "नेहरू भारत में वैज्ञानिक क्रांति के अग्रदूत थे। वे देश भर में विज्ञान की अलख जगा देना चाहते थे ताकि जन-जन में वैज्ञानिक अभिरुचि उत्पन्न हो सके और एक वैज्ञानिक संस्कृति पनपे जो कि भारत की दरिद्रता को दूर कर
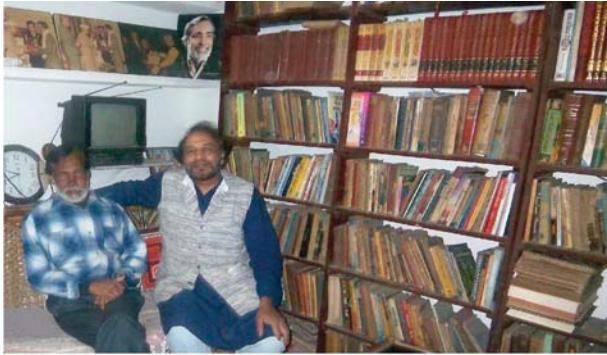
सके, लाख-लाख बेरोजगारों, भूखे-गरीबों की आँखों को रौशन कर सके। नेहरू के सपने सारे देश और समूची मानवता के सपने थे क्योंकि नेहरू भावी युग का आगामी इतिहास भी देख रहे थे। नेहरू का मानना था कि भूख और अज्ञान रूपी अभिशापों का पाश विज्ञान ही काट सकता है।” नेहरू की वैज्ञानिक दृष्टि को समझने के लिए यह एक महत्वपूर्ण पुस्तक है।

श्री शुकदेव प्रसाद के संयोजकत्व में 12 अप्रैल 1981 को आयोजित अखिल भारतीय पर्यावरण संगोष्ठी में प्रस्तुत आलेखों का संकलन है-‘पर्यावरण और हम’। आलेख प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा लिखे गए हैं और ‘पर्यावरण और संस्कृति’, ‘हम और हमारा पर्यावरण’, ‘प्रदूषण-समस्याएं और समाधान’ तथा वानिकी के विविध पहलुओं पर केन्द्रित हैं। श्री शुकदेव ने संपादक की हैसियत से इस संकलन की मूल भावना को इन पंक्तियों में व्यक्त किया है:

धरती माता को प्रणाम। वंदनीय तरुओं को नमन।
सूर्य देव को नमस्कार। जल देवता को प्रणाम।।

वे आगे लिखते हैं, पृथ्वी और उसके जैविक संसाधनों को यदि हम भावी पीढ़ी के लिए बचाकर नहीं रखेंगे तो वे हमारी इस कृतघ्न पीढ़ी को कभी क्षमा नहीं करेंगे। माँ भारती के प्रति ‘सुजलाम् सुफलाम्....शस्यश्यामलाम्’ की हमारी सुखद कल्पनाएँ उसके लिए मात्र अतीत की एक गाथा बनकर रह जाएंगी। और, गाँधी की भाषा में कहें तो भावी पीढ़ियों के हित-चिंतन के बिना धरती को विनाष के कगार पर पहुँचा देना खुलेआम हिंसा का प्रदर्शन है।

अगले माह एक दिन फिर फोन घनघनाया.....।

“हाँ, मेवाड़ी जी, क्या हाल हैं? दिल्ली आया हूँ। आज मिलूंगा आपसे....।”

दिन में श्री शुकदेव प्रसाद मेरे ऑफिस में नुमूदार हुए। लिखने-पढ़ने की तमाम बातें हुईं और जाते समय उन्होंने अपने झोले में से एक पुस्तक निकाली और हर बार की तरह उसके पहले पन्ने पर अपनी लेखकीय खुशखत लिखावट में लिखा, ‘प्रिय भाई श्री देवेंद्र मेवाड़ी को सप्रेम भेंट, शुकदेव प्रसाद, 11,10,90।’ पुस्तक थी, ‘परिवहन की कहानी’। शाम को घर पर पुस्तक पलटी तो देखा परिवहन पर बहुत श्रम से लिखी गई कृति है। पुस्तक में शती-दर-शती पहियों का सफर बयां करने के साथ-साथ उड़ने का रोमांच, धरती से चाँद तक, पानी की लहरों पर, नए-नए भूभागों की खोज, भाप का करिश्मा और नए तरह के हवाई वाहन शीर्षकों के तहत जल, थल और नभ में मानव की परिवहन गाथा गूंथी गई है। इसके बारे में लेखक ने अपनी चिरपरिचित भाषा-शैली में लिखा था, “प्रकृति विजय का रोमांच आदिम साहस, धैर्य, शौर्य और पराक्रम की यशोगाथा तो है ही, साथ ही यह हमारी वैज्ञानिक विरासत है। अतीत के इन दुस्साहसिक अभियानों को कथा के रूप में पिरोने की भरसक चेष्टा मैंने की है। जल, थल और नभ परिवहन साधनों के उत्स और उनकी विकास-यात्रा को कथा शैली में प्रस्तुत किया गया है...।”

उस दौरान श्री शुकदेव प्रसाद से यदा-कदा फोन पर हिंदी में विज्ञान लेखन पर चर्चा होती रहती थी। नब्बे के दशक में कभी उन्होंने बताया था कि उनकी पुस्तकों की संख्या शताधिक हो चुकी है। मुझे उनकी सभी शताधिक पुस्तकों को पढ़ने का अवसर तो नहीं मिला लेकिन जो पुस्तकें उपलब्ध हो सकीं, उन्हें रूचि के साथ पढ़ा और महसूस किया कि वे श्रम और समर्पण के साथ लिखते हैं।

फिर तबादला होने के कारण मैं दिल्ली से चंडीगढ़ चला गया और वहाँ साढ़े तीन साल रहा। इस बीच श्री शुकदेव से केवल कभी-कभार ही फोन सम्पर्क रहा। सन् 2003 में दिल्ली वापस आ गया। उसी साल 26 दिसंबर को उनसे भेंट हुई और उन्होंने अपनी तीन पुस्तकें भेंट कीं: ‘हिमीभूत और अन्य विज्ञान कथाएं’, ‘भावी सदियों की विज्ञान कथाएं’ और ‘जैव प्रौद्योगिकी के विविध आयाम।’ हिंदी में उन दिनों जैव प्रौद्योगिकी की सरल-सहज भाषा में नवीनतम जानकारी देने वाली खास पुस्तक थी ‘जैव प्रौद्योगिकी के विविध आयाम’।

उनकी विज्ञान कथाएं मैं विगत वर्षों में पढ़ता रहा था और यह देख कर खुशी होती थी कि वे विज्ञान कथा विधा में भी लिख रहे हैं। ‘हिमीभूत और अन्य विज्ञान कथाएं’ संग्रह में उनकी आठ कथाएं दी गई थीं। लेखकीय ‘मंतव्य’ में उनकी इस बात से मैं सहमत नहीं हुआ कि ‘मेरी कहानियाँ भावी विज्ञान का संधान नहीं करती हैं।’ यदि ऐसा था तो संग्रह की कहानी ‘वसुधैव कुटंबकम्’ जैव प्रौद्योगिकी की भावी आशंकाओं, ‘हिमीभूत’ रेडियोधर्मी विकिरण के खतरों और ‘अभी उस दिन’ पराजीनी फसलों के दीर्घकालिक पर्यावरणीय दुष्परिणामों के प्रति क्यों सचेत करती है? हां, ‘मंतव्य’ में ही कही गई उनकी इस बात से सहमत हुआ जा सकता था, ‘आवश्यक नहीं कि गल्पों में भावी विज्ञान की तलाश की जाए। वैज्ञानिक जीवन के भी सामाजिक सरोकार होते हैं।’

विज्ञान के वर्तमान प्रयोग कल हमारे जीवन, हमारे समाज और प्रकृति पर क्या प्रभाव डालेंगे, यह परिदृश्य तो निस्संदेह विज्ञान कथाएं ही प्रस्तुत कर सकती हैं। यह 'भविष्यवाचन' नहीं बल्कि भविष्य चित्रण होता है जो केवल संभावना को सामने रखता है।''

श्री शुकदेव प्रसाद की कहानियों में वर्तमान और भविष्य दोनों ही मौजूद थे। यही बात 'भावी सदियों की विज्ञान कथाएं' पर भी लागू होती है। इस संग्रह में सात भविष्योन्मुखी विज्ञान कथाएं संकलित थीं। इसके 'मंतव्य' में लेखक ने चेतावनी के रूप में यह सटीक वक्तव्य दिया था, 'इतिहास गवाह है, जब-जब मनुष्य ने प्रकृति को अपने वश में करना चाहा, उस पर शासन करना चाहा, मनुष्य की हार हुई है। स्मरण रहे, हम प्रकृति की संतान हैं, स्वामी नहीं! प्रकृति हमारी दासी या चेरी नहीं, मां हैः माता भूमिः पुत्रोऽ हम् पृथिव्याः।'

इसके बाद फिर कुछ वर्षों का दीर्घ मौन। न फोन पर कोई चर्चा, न कोई भेंट-मुलाकात। भेंट हुई 27 फरवरी 2008 को उनके नए घर छोटा बघाड़ा, इलाहाबाद में। उनकी पुस्तकों के विशाल संग्रह, पन्ना-दर-पन्ना परत-दर-परत सहेजी गई पत्र-पत्रिकाओं के भंडार, पूरी दीवार पर आरपार सुशोभित प्रमाणपत्रों, स्मृति-चिह्नों और विज्ञान लेखन की विविध स्मृतियों के बीच। हम विज्ञान परिषद प्रयाग में टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान के होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र द्वारा आयोजित एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला में भाग लेने के लिए इलाहाबाद गए थे। साथ में विज्ञान लेखक डॉ. सुबोध महंती और डॉ.पी.के. मुकर्जी भी थे। तब श्री शुकदेव प्रसाद से हिंदी विज्ञान लेखन पर विशद चर्चा हुई थी। इलाहाबाद से लौटते समय अचानक खड़ा-खड़ी शुकदेव आए और 'बीसवीं शती का विज्ञान विश्वकोश' के चार खंड यह कह कर पकड़ा गए कि इन्हें पढ़िएगा।

तब से वहाँ गंगा-यमुना में बहुत पानी बह चुका होगा और मुझे उन चारों खंडों को पढ़ने के बाद कुछ कहने-लिखने का अवसर अब मिल रहा है। पहले तो यही कह दूँ कि विज्ञान कथाओं पर एक हजार पाँच सौ बहत्तर पृष्ठों की मुद्रित सामग्री के संकलन जैसा विकट श्रमसाध्य कार्य संगम तट पर अहर्निश विज्ञान के लेखन व मनन-पाठन की तपस्या में रत मसिजीवी शुकदेव ही पूरा कर सकता था। इसलिए कि उसकी संग्रह प्रवृत्ति कठिन श्रम करके भविष्य के लिए भोजन संग्रह करने वाली किसी गिलहरी या अपने मधुकोशों में फूलों का मधुरस लाकर जमा करने वाली मधुमक्खी की तरह है। इसी प्रवृत्ति के कारण शुकदेव शुकदेव बन सके। मैं जानता हूँ कि किस मेहनत से उन्होंने इस विषय पर यहाँ-वहाँ और जहाँ-जहाँ जो भी सामग्री मिली, उसे अपने संग्रह में सहेज कर रखा और समय आने पर उसके सहारे

तब से वहाँ गंगा-यमुना में बहुत पानी बह चुका होगा और मुझे उन चारों खंडों को पढ़ने के बाद कुछ कहने-लिखने का अवसर अब मिल रहा है। पहले तो यही कह दूँ कि विज्ञान कथाओं पर एक हजार पाँच सौ बहत्तर पृष्ठों की मुद्रित सामग्री के संकलन जैसा विकट श्रमसाध्य कार्य संगम तट पर अहर्निश विज्ञान के लेखन व मनन-पाठन की तपस्या में रत मसिजीवी शुकदेव ही पूरा कर सकता था। इसलिए कि उसकी संग्रह प्रवृत्ति कठिन श्रम करके भविष्य के लिए भोजन संग्रह करने वाली किसी गिलहरी या अपने मधुकोशों में फूलों का मधुरस लाकर जमा करने वाली मधुमक्खी की तरह है। इसी प्रवृत्ति के कारण शुकदेव शुकदेव बन सके।

अतीत से आज तक का विज्ञान-कथा इतिहास बांच दिया। मैंने एक बार परिहास में पूछा, ''तुम्हारे भानुमती के पिटारे में और क्या-क्या शेष है?'' उन्होंने अपने ही मुहावरे में उत्तर दिया, ''अरे यार किसी भी माई के लाल में यह काम करने का दम नहीं।'' फिर मुस्करा कर कहा, ''आपको छोड़ कर।''

इस ग्रंथ योजना में और भी खंड होंगे, लेकिन उन्होंने इसके प्रथम चार खंड विज्ञान कथाओं को समर्पित किए। प्रथम और द्वितीय खंड की भूमिका 'विज्ञान कथाओं के उत्स की खोज' और 'विज्ञान कथाओं के यक्ष प्रश्न' के तहत उन्होंने अपनी पैनी नजर से हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथाओं के इतिहास की गहरी पड़ताल की है और संक्षेप में विभिन्न कथाकारों के योगदान को भी रेखांकित किया है। इस प्रयास में उनके गंभीर पठन-पाठन और विवेचन क्षमता का पता चलता है। यह इस कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि भारतीय भाषाओं के विज्ञान कथा साहित्य पर इस प्रकार का शोधपरक गंभीर विवेचन तब तक अन्यत्र उपलब्ध नहीं था। खंड-1 और खंड-2 में उन्होंने कुल 69 चुनिंदा भारतीय विज्ञान कथाओं को शामिल किया। इसमें उन्होंने हिंदी में उपलब्ध हर संभव मौलिक तथा अनूदित विज्ञान कथाओं का चयन करके विनम्रतापूर्वक यह स्वीकारोक्ति भी की है..."मेरे संसाधनों और ज्ञान की सीमा है। संभव है, कुछ नाम छूट गए हों, लेकिन वह सिर्फ मेरी अज्ञानतावश ही, किसी के प्रति मेरा न तो कोई दुराव है और न पूर्वाग्रह ही।"

इन दोनों खंडों में कुछ ऐसी ऐतिहासिक महत्व की विज्ञान कथाएं दी गई हैं जिन्हें आज अन्यत्र खोज पाना असंभव है। 'विज्ञान कथाओं के यक्ष प्रश्न' में शुकदेव प्रसाद ने पूरी ईमानदारी और साहस से दो टूक प्रश्न उठा कर विज्ञान कथा साहित्य का हित किया है। इन यक्ष प्रश्नों पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए क्योंकि इनके उत्तर भावी विज्ञान कथाकारों का मार्गदर्शन करेंगे।

उनका कहना है, ''विज्ञान की खोजें विज्ञान गल्पों का निमित्त होना चाहिए अन्यथा हम अब तक प्रकाशित गल्प साहित्य को मात्र सूचीबद्ध करके ही प्रमुदित होते रहेंगे। विज्ञान गल्प को एक-सरस विधा के रूप में अपनाया जाना चाहिए लेकिन स्मरण रहे कि वे आलेख न हों अथवा किसी मान्य सिद्धांत को कुछेक पात्रों के मुख से नाटक के रूप में प्रस्तुत कर दिया जाए, तो फिर वह कथा कहां रह गई? 'मैं कोयला हूँ', 'प्रकाश की कहानी', 'मैं हूँ रोबोट' विज्ञान कथाएं नहीं हैं। अधुनातन विज्ञान को समझ कर उनमें नवोन्मेष तलाशें और कथा शिल्प में ढालें। विज्ञान गल्प लेखन के लिए विज्ञान-सिद्धि और रस-सिद्धि दोनों आवश्यक हैं।''

उनका कहना है, 'विज्ञान की खोजें विज्ञान गल्पों का निमित्त होना चाहिए अन्यथा हम अब तक प्रकाशित गल्प साहित्य को मात्र सूचीबद्ध करके ही प्रमुदित होते रहेंगे। विज्ञान गल्प को एक-सरस विधा के रूप में अपनाया जाना चाहिए लेकिन स्मरण रहे कि वे आलेख न हों अथवा किसी मान्य सिद्धांत को कुछेक पात्रों के मुख से नाटक के रूप में प्रस्तुत कर दिया जाए, तो फिर वह कथा कहाँ रह गई?'

'विश्व विज्ञान कथाएं' खंड में विश्व प्रसिद्ध विज्ञान कथाकारों की 40 विज्ञान कथाओं को संकलित किया गया है। इनमें से लगभग सभी अनूदित हैं और उनका सार-संक्षेप दिया गया है। अनुवाद और संक्षिप्तिकरण की अपनी सीमाएं हैं। फिर भी उस कथा को महसूस किया जा सकता है। संकलन में अस्तित्ववादी दार्शनिक अल्बर्ट कामू के विश्व प्रसिद्ध क्लासिक उपन्यास 'प्लेग' और पर्ल एस. बक के 'क्रिसमस का तारा' को विज्ञान कथा की श्रेणी में रखना शायद न्यायोचित नहीं होगा। हालांकि नोबेल पुरस्कार विजेता साहित्यकार डोरिस लेसिंग के किसी विज्ञान गल्प का सारांश देना शायद उचित रहता। 'प्लेग' जैसी अस्तित्ववादी दर्शन को समझाती रूपक कथा को उसी तरह विज्ञान गल्प कहना शायद ठीक नहीं जैसे काफ्का की क्लासिक कहानी 'मैटामॉर्फोसिस' को विज्ञान कथा कहना। लेकिन, संपादक ने अधिकांश विज्ञान कथाओं का चयन बहुत सूझ-बूझ के साथ किया है।

'बाल विज्ञान कथाएं' खंड में 'बालमन की उड़ानें और विज्ञान कथाओं के सच' वक्तव्य के साथ कुछ विज्ञान कथाओं का परिचय देते हुए शुकदेव ने देश-विदेश की इक्कावन विज्ञान कथाएं संकलित की हैं। यह खंड वैश्विक स्तर पर बाल विज्ञान कथा साहित्य का एक विहंगम दृश्य प्रस्तुत करता है। इसमें भारतीय भाषाओं के अधिकांश विज्ञान कथाकारों की कहानियाँ शामिल हैं। नई पीढ़ी के कुछ विज्ञान कथाकार छूट गए हैं लेकिन जैसा कि संपादक शुकदेव पहले ही कह चुके हैं कि "मेरे संसाधनों और ज्ञान की सीमा है। संभव है कुछ नाम छूट गए हों।"....

अपने पास उपलब्ध उनकी सभी कृतियों का पारायण करने के बाद जाहिर है मैं श्री शुकदेव जैसे ऊर्जावान विज्ञान लेखक की नई कृतियों की प्रतीक्षा करता था और संगम तट के उस मसिजीवी साथी से अपेक्षा करता था कि वे लिखते रहें, निरंतर लिखते रहें और अपनी नई कृतियों से नई पीढ़ी का मार्गदर्शन करते रहें।

लेकिन जरा, रुकिए। उन पर छप रहे पत्रिका के उस विषेशांक के लिए लेख का क्या हुआ? अनुरोध करने के दो-तीन दिन बाद फिर उनका फोन आया था।

"हैलो! मेवाड़ी जी ई ई... शुकदेव बोल रहा हूँ।"

"नमस्कार"

"अरे यार, उस लेख का क्या हुआ? आप तो भेजने वाले थे? ज्यादातर मैटर कंपोज हो गया है। पेज फार्मेटिंग हो रही है। कब तक भेज रहे हैं, पक्का बताइए...."

"आज पक्का भेज रहा हूँ। विज्ञान विश्वकोश के चारों खंड पढ़ रहा था....।"

"अरे, अब भेज भी दो यार...बहुत लेट हो रहा है। प्रिंटर परेशान हो रहा है।"

"अच्छा, आज भेज रहा हूँ। मेल देखना सुबह...।"

"ठीक है। देखूँगा, भेज देना जरूर....।"

"जरूर....।"

'हाँ' तो कह दिया लेकिन 'हाँ' कहते-कहते भी हफ्ता बीत गया। खैर, लेख पूरा हुआ। उस बीच मैं सोचता रहा, संगम तट के उस मसिजीवी साथी लेखक के बारे में जिसने तब अपने जीवन के अट्ठावन वसंत विज्ञान लेखन को समर्पित कर दिए। जब लोग बेहतर नौकरियाँ तलाश रहे थे, ऊँचे ओहदे पाने की लालसा में चाहा-अनचाहा कुछ भी कर रहे थे, और ज्यादा...और ज्यादा पैसा कमाने की जुस्तजू में जी रहे थे, तब संगम तट का यह मसिजीवी साथी हिंदी विज्ञान लेखन के सतत कर्म में जीने का मर्म खोज रहा था।

उसकी कलम नहीं रुकी। स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के बावजूद वह लगातार लिखता रहा। दस साल बाद उसने 'विज्ञान कथा कोश' के छह खंडों के काम को अंजाम दे दिया। और फिर, संगम तट का वह साथी इस धरती पर अपने जीवन के 68 वसंत पार करके, विज्ञान लेखन की अलख जगा कर, 23 मई 2022 को अनंत में लीन हो गया।

अलविदा प्रिय साथी!

dmewari@yahoo.com
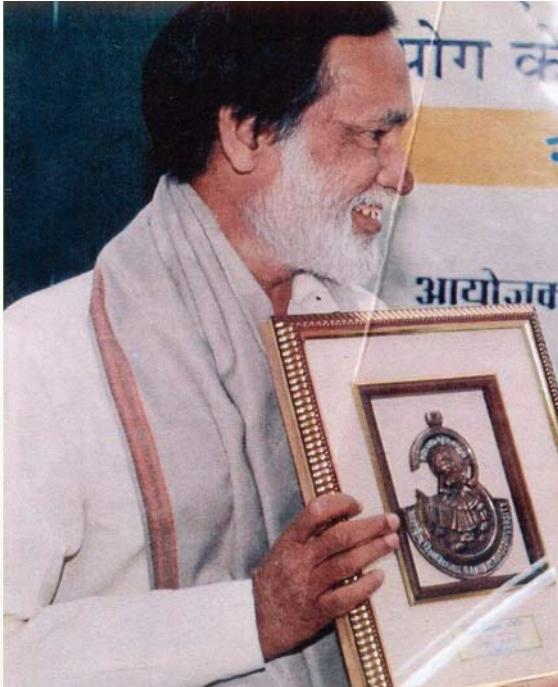
लोकप्रिय विज्ञान लेखन के एक युग का अवसान

डॉ. अरविंद मिश्र

शुकदेव जी का सहसा अपने बीच से सदा के लिए चला जाना अप्रत्याशित और अविश्वसनीय था। मेरे इलाहाबाद प्रवास के दिनों (1976-1983) की मित्र मंडली में मेरे और शुकदेव जी के कामन मित्र और उन दिनों अमृत प्रभात के उप संपादक रहे श्री रामधनी द्विवेदी जी ने मुझे वाट्सऐप पर दिनांक 23 मई 2022 को रात्रि में सूचित किया कि शुकदेव जी नहीं रहे। मैं स्तब्ध! अभी तो दो दिन पहले ही उनसे बात हुई थी। अपने स्वभाव के विपरीत वे उत्तराखंड से नयी प्रकाशित हो रही पत्रिका 'विज्ञान संप्रेषण' की प्रशंसा कर रहे थे और उसके लिये लेखकीय सहयोग का अनुरोध भी कर रहे थे। हालांकि विगत कुछ वर्षों से वे अपनी आँखों के विकार से परेशान थे। आपरेशन के लिये धनाभाव का भी निरंतर जिक्र कर रहे थे। मुझसे भी आर्थिक सहयोग की अपेक्षा थी जिसके लिये मेरे आवास मेघदूत पर भी उनका शुभागमन हुआ था।

मुझे हमेशा यह अखरता रहा है कि भारत में प्रतिभाशाली, सृजनकर्मी, साहित्यकारों की आखिरी नियति मुफलिसी की ही क्यों होती है? शुकदेव जी और गुणाकर मुळे जी ऐसे वैज्ञानिक साहित्यकार रहे जिन्होंने केवल अपनी लेखनी के बल पर आजीविका चलाने का चुनौती भरा निर्णय लिया। वे चाहते तो लेखन की दुनिया में ही कहीं भी किसी भी विज्ञान पत्र-पत्रिका में नौकरी कर लेते। मगर स्वछंद लेखन तो जैसे उनका एक नशा था। उन्हें अपने रचनाकर्म में किसी की दखलंदाजी पसंद नहीं थी। मातहती किसी कीमत पर स्वीकार नहीं थी। यहाँ तक कि उनके लिखे पर किसी के द्वारा कोई फेरबदल हो यह कतई पसंद नहीं था। नामचीन संपादकों को भी इसकी अनुमति नहीं थी। एक वाक़या याद आ रहा है। उन दिनों अमृत प्रभात इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाला सबसे लोकप्रिय अखबार था जिसके साहित्य संपादक मशहूर कवि मंगलेश डबराल जी थे। शुकदेव जी ने कोई लेख दिया। साथ ही यह हिदायत भी कि कामा फुलस्टाफ तक भी न बदला जाय, जैसा दिया है लेख वैसा ही छपना चाहिए। मंगलेश जी ने सविनय लेख वापस कर दिया। फिर तो शुकदेव जी ने अमृत प्रभात के लिए तब तक लिखा ही नहीं जब तक मंगलेश जी वहाँ रहे।

इस मेधावी विज्ञान लेखक से मेरी आमने-सामने की भेंट तो इलाहाबाद में मेरे पढ़ने के आरंभिक वर्षों 1976-78 के दौरान हुई किन्तु उनके लेखों से मैं पहले से ही परिचित था। बल्कि यों कहिये कि वे मेरे पसंदीदा लेखक बन चुके थे। मैं जब इंटरमीडिएट का छात्र था तो शुकदेव जी की एक श्रृंखला वाराणसी के मशहूर अखबार आज में छप रही थी, शीर्षक था - जीव जंतुओं की रोचक दुनिया। शैली इतनी प्रवाहमय और पुष्ट कि लगता था लेखक कोई वयोवृद्ध होंगे। मगर जब उनसे इलाहाबाद में संभवतः 1978 में मुलाकात हुई तो एक तेजोमय युवा लेखक को शुकदेव के रूप में पाकर चकित हुये बिना नहीं रह सका।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के साइंस फैकल्टी में ही विज्ञान परिषद स्थित है। संभवतः मेरी पहली मुलाक़ात शुकदेव जी से वहीं हुई थी या फिर पर्यावरण पर उनके द्वारा आयोजित एक संगोष्ठी में जिसमें जाने माने साहित्यकार विद्यानिवास मिश्र जी और वन विभाग के एक तत्कालीन उच्चस्थ अधिकारी राम लखन सिंह प्रभृत श्रेष्ठजन भी पधारे हुये थे। वह शुकदेव जी की कीर्ति का शिखर काल चल रहा था। जिसका चरमोत्कर्ष 1986 में उन्हें सोवियत लैंड नेहरु एवार्ड हासिल होने पर हुआ। इस पुरस्कार से वे विख्यात साहित्यकारों की पंक्ति में सहसा आ खड़े हुये। यह पंक्ति थी सुमित्रानंदन पंत, हरिवंशराय बच्चन, फिराक गोरखपुरी आदि चोटी के साहित्यकारों की। जाहिर है एक विज्ञान लेखक को इस श्रेणी में पहुँचना एक विलक्षणता थी, और इससे नामचीन साहित्यकारों में इस प्रखर युवा लेखक का दबदबा बन गया। यह शुकदेव जी के लेखकीय जीवन का टर्निंग प्वाइंट था।

मगर आज सिंहावलोकन करता हूँ तो लगता है कि यही समय शुकदेव जी के जीवन का वह क्षण भी रहा जब उनमें एक तरह का अवांछनीय दंभ भी समा गया जिससे उनकी बहुत निजी क्षति भी हुई। अपने आगे वे किसी समवयी, अग्रज या अनुज लेखक को हेय समझने लगे। कभी-कभी दंभ और स्वाभिमान में फर्क कर पाना बहुत मुश्किल होता है। उनके इस अवांछित से बर्ताव को देखकर झेलकर अजीब सा लगता था। एक बार इलाहाबाद में ही कटरा स्थित आर्य समाज के सभाकक्ष में आयोजित एक कार्यक्रम में उन्होंने स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती के सामने ही विज्ञान परिषद प्रयाग के प्रधानमंत्री और यशस्वी विज्ञान लेखक डॉ. शिवगोपाल मिश्र के लिये कह डाला कि जब वे (शुकदेव प्रसाद) डॉ. मिश्र जी के उम्र के होंगे तो सूरज से तपेंगे। मगर विडंबना देखिये कि डॉ. मिश्र के सामने ही उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। किन्तु यह सत्य है कि अपनी यशः काया में वे सदैव जीवित रहेंगे।

शुकदेव जी का विज्ञान परिषद में आना जाना 1980 के बाद निरंतर कम होता गया। आखिर वे जो एक समानांतर समतुल्य विज्ञान मठ की निर्मिति में लग गये थे। जहाँ से वे 'विज्ञान भारती', 'विज्ञान वैचारिकी' और 'पर्यावरण दर्शन' पत्रिका त्रयी के सम्पादन और प्रकाशन में जुट गए थे। यही वह वक्त था कि देश भर के उद्भट विज्ञान लेखक आते तो विज्ञान परिषद की गोष्ठियों में मगर शाम को जा पहुँचते शुकदेव जी के एलेनगंज स्थित एकल साधना कक्ष में। वहाँ मैंने गुणाकर मुळे, प्रेमानंद चंदोला और रमेशदत्त शर्मा सरीखे उद्भट विज्ञान लेखकों को जाना देखा था। समय के साथ शुकदेव जी का विज्ञान परिषद के साथ अलगाव बढ़ता ही गया। जो हम सरीखे विज्ञान लेखकों के लिये पीड़ाजनक था मगर हम कर भी क्या सकते थे? डरते भी थे कि कहीं 'दो पाटन के बीच साबुत बचा न कोय' की गति न हो जाय।' इसलिये मैं ही नहीं, उस काल के अनेक लेखकों ने इस अप्रिय स्थिति को लेकर एक दीर्घकालिक चुप्पी साध ली थी।

शुकदेव जी का मूलभूत विज्ञान संबंधी ज्ञान और उसका प्रस्तुतीकरण बेजोड़ था। अप्रतिम। इसलिये परीक्षाओं के प्रतिस्पर्धी पाठकों को उनके लिखे की प्रामाणिकता में तनिक भी संदेह नहीं होता था। ऐसा मुझे विज्ञान के सामान्य ज्ञान के कई अध्येता छात्र बताते रहते। उनका लेखन ऊबाऊ पाठ्य पुस्तकीय लेखन से अलग रोचकता लिये होता। भाषा शैली की अद्भुत रवानगी देखने को मिलती। वे अद्यतन वैज्ञानिक गतिविधियों पर भी पूरी नज़र रखते। खुद अच्छे अध्येता थे।

डॉ. अरविन्द मिश्र भारत में विज्ञान कथा (साइंस फिक्शन) लेखन से जुड़ा एक जाना माना नाम। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राणी शास्त्र में डी फिल, लोकप्रिय विज्ञान लेखक एवं कथाकार। 'एक और क्रौच वध', 'कुंभ के मेले में मंगलवासी' और 'राहुल की मंगल यात्रा' विज्ञान कथा संकलन के साथ ही कई लोकप्रिय विज्ञान विषयक और बच्चों के लिए विज्ञान गल्प पर लिखीं पुस्तकें प्रकाशित। आपकी कहानियां विश्व की कई भाषाओं में अनूदित और अनुशंसित हैं। लोकप्रिय विज्ञान विषयक कई ब्लॉगों का नियमित लेखन। प्रमुखतः साईब्लॉग और साइंस फिक्शन इन इंडिया। साइंस ब्लॉगर्स असोसिएशन के मानद अध्यक्ष। इन्डियन साइंस फिक्शन राईटर्स एसोसिएशन के संस्थापक सचिव। चेंगडू, चीन में अन्तरराष्ट्रीय विज्ञान कथा सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया।

मांग पर अखबारों में तत्काल प्रामाणिक जानकारियों से युक्त लेख भेज देते। परमाणु ऊर्जा और अन्तरिक्ष उनके प्रिय विषय थे। हालाँकि उन्होंने विज्ञान के विविध विषयों पर अपनी लेखनी चलायी। शताधिक पुस्तकें लिखीं। हजारों हजार लेख।

दरअसल बहुत लोग विज्ञान लेखन और लोकप्रिय विज्ञान लेखन को लेकर अक्सर संभ्रमित रहते हैं। विज्ञान लेखन एक छतरी शब्द है जिसमें विज्ञान लेखन की विविध विधाएँ समाहित हैं। शोधपत्र लेखन, पाठ्य पुस्तक के लिए लेखन, विज्ञान प्रोजेक्ट लेखन, शोध प्रबंध लेखन आदि विधाओं में एक उल्लेखनीय विधा है लोकप्रिय विज्ञान लेखन की। यह आम पाठकों के लिये है। जिसे विज्ञान का कोई खास ज्ञान नहीं होता। उसे विज्ञान की जानकारी देना एक विशेष कौशल की मांग करता है। यहाँ जरुरत होती है एक विशिष्ट लेखकीय क्षमता की। शुकदेव जी जिसमें निष्णात थे। उन जैसी लेखकीय क्षमता विरलों में ही है। जहाँ गुणाकर मुळे जी के लेखन की समझ के लिए एक तरह की पाठकीय परिपक्वता जरूरी थी, शुकदेव जी के लेखन को ऐसे किसी विशिष्ट पाठकीय वर्ग की दरकार नहीं थी। उनका लिखा सहज ही बोधगम्य था एक विशाल पाठक वर्ग के लिये। क्या बुद्धिजीवी क्या आम परीक्षा प्रतिस्पर्धी छात्र सभी उनके लेखन के मुरीद थे। वे रमेशदत्त शर्मा, देवेन्द्र मेवाड़ी की लेखकीय परंपरा के वाहक रहे। आज हिन्दी विज्ञान लेखन की वैसी ललित शैली के वाहक बस देवेन्द्र मेवाड़ी जी हैं। कहूँ तो ललित विज्ञान शैली के लेखन के त्रिदेवों में सौभाग्य से वे ही हमारे बीच हैं। अन्य दोनों महारथी स्मृति शेष हुये।

लोकप्रिय विज्ञान लेखन में हठात पारिभाषिक विज्ञान शब्दावलियों के समावेश के पक्ष में शुकदेव जी नहीं थे। पारिभाषिक शब्दावली जहाँ हिन्दी के पाठ्य पुस्तकों के लिये अनिवार्य हो सकती है लोकप्रिय विज्ञान लेखन के प्रवाह में वह रोड़े सी खटकती है। इसलिये एक कुशल लोकप्रिय विज्ञान लेखक अपनी प्रवाहमयी भाषा शैली के लिये खुद अपने शब्द गढ़ता है जो उसके पाठकों के लिये सहज ही बोधगम्य होता है। उनकी जैव प्रौद्योगिकी पर एक पुस्तक की समीक्षा करते हुए मैंने ऐसे कई शब्दों को चिह्नित किया था जिसे शुकदेव जी ने पहली बार गढ़ा और कई लेखकों ने तदनंतर उनको अपना लिया। जैसे-डीएनए अंगुलिछाप, जीन मानचित्रण, प्रजातिक लक्षण, जीन स्थांतरण, तैल अपक्षीलन, कूटित अनुदेश, जीनोपचार, पराजीनी फसल आदि।

शुकदेव जी ने लोकप्रिय विज्ञान लेखन की जो बयार बहाई, जिस लेखकीय बेल को अपने संस्पर्श से सिंचित किया वह आज सहज ही पहचानी जाती है। उनकी भाषा शैली में जो प्रांजलता और साहित्यिकता है वह किसी भी लोकप्रिय विज्ञान लेखक के लिए आदर्श है। किन्तु मुझे क्षोभ है कि अन्यान्य कारणों से विज्ञान लेखन की यह सौन्दर्य लहरी अब लुप्त सी हो चली है। लोकप्रिय विज्ञान लेखन के सरकारी प्रतिष्ठानों में प्रतिभा की पहचान व कद्र दोनों नदारद है। पुरस्कार सम्मान के देन-लेन की दुरभिसंधियों में प्रतिभाओं का अवमूल्यन हो चला है। शुकदेव शैली के लेखन के स्वतः स्फूर्त प्रयास सरकारी सिस्टम में उपेक्षित है। अन्यथा यह कोई बात थी कि केन्द्र सरकार की विज्ञान संचार की संस्थाओं ने विगत दो दशकों में शुकदेव जी के प्रयासों को एकदम से अनदेखा कर दिया गया ।
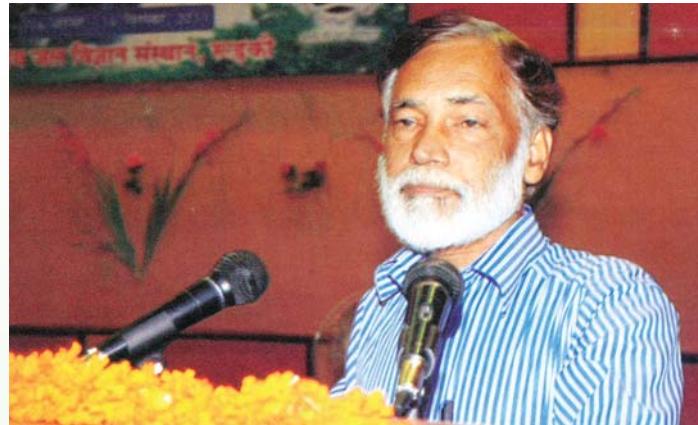
वे किसी भी सरकारी आयोजन, सम्मेलन, कार्य शिविर में बुलाये तक नहीं गये। यह एक कटु सत्य है। जिससे उद्विग्न और क्षुब्ध शुकदेव जी ने यह भी टिप्पणी की कि उनके द्वारा किसी भी तरह का सरकारी अनुग्रह स्वीकार करना गोमांस सेवन सदृश है। हालांकि यह भी सच है कि उनके व्यक्तित्व के रूखेपन और अव्यवस्थित चित्त के भय से कि वे पता नहीं क्या बोल पड़ें उनको आमंत्रित करने का जोखिम लेने को कोई भी सरकारी व्यक्ति तैयार नहीं होता था। वे प्रायः बातचीत में चुनिंदा सुभाषितम की ऐसी बौछार करते कि सुनने वाला स्तब्ध या किंचित भयभीत सा हो उठता। फोन पर बात करते हुये उन्होंने मुझे ही कितने लोगों को धारावाह इतने और ऐसे विशेषणों से नवाज़ा है कि उन्हें यहाँ लिखा नहीं जा सकता। और उनकी यह तल्खी निश्चित ही अनवरत उपेक्षा के परवान चढ़ती चली गई। जबकि मेरा उनके प्रति सम्मान सदैव बना रहा तो उनके कृतित्व के चलते। दुधारू गाय की लात भी सहनी पढ़ती है। अपने प्रशंसकों के लिये तो वे विज्ञान लेखन के दुधारू गाय सदृश ही थे।

जिन दिनों वे विज्ञान संचार के सरकारी संस्थानों की अनदेखी और उपेक्षा सहन कर रहे थे उनके लिये आईसेक्ट

विश्वविद्यालय समूह के कुलाधिपति और नामचीन साहित्यकार संतोष चौबे जी एक मजबूत संबल बने। उन्हें गोष्ठियों में बुलाना और यथोचित सम्मान और मानदेय देना उनकी सदाशयता थी जो शुकदेव जी के अंतकाल तक बनी रही। इस स्नेह वत्सलता की चर्चा शुकदेव जी स्वभाव के विपरीत मुझसे अक्सर करते। खुद फोन करते और बताते। फिर आत्मश्लाघा में मेरे ऊबने की सीमा तक एकाध घंटे तक आत्मालाप करते जाते। उनके सम्मान में मैं अतिशय सहनशीलता बरतता। प्रतिभा के असम्मान की मैं सोच भी नहीं सकता था।

विज्ञान कथाओं को लेकर शुकदेव जी का अपना एक अलग नज़रिया था। वे विज्ञान कथाओं की भविष्योन्मुखता पर सवाल उठाते थे। यद्यपि विज्ञान कथाओं में भविष्योन्मुखता अनिवार्यतः हो यह जरूरी नहीं है मगर यह विज्ञान कथाओं की एक प्रमुख पहचान अवश्य है। हालांकि शुकदेव जी ने ज्यादा विज्ञान कथाएँ नहीं लिखीं मगर जो लिखीं वे बहुत उम्दा और मज़े की बात वे खुद भी भविष्योन्मुखी ही हैं। उनका विज्ञान कथाओं का संकलन 'हिमीभूत' है जिसमें यही कोई आधी दर्जन कथायें दर्ज हैं। उन्होंने विज्ञान कथायें भले ही कम लिखी हों मगर विज्ञान कथाओं पर विपुल साहित्य रचा है। उनका विज्ञान कथाओं पर एक बहुखंडी प्रकाशन आईसेक्ट विश्वविद्यालय से सद्यः प्रकाशित है जिसको लेकर वे बहुत उत्साहित रहते थे और मुझसे अक्सर चर्चा किया करते थे। प्रायः कहते कि मेरी तीन कहानियाँ उसमें चयनित की गयी हैं। कहने का लहजा ऐसा रहता जैसे मुझ पर परम उपकार किया गया हो। मैं विनम्रता में कृतज्ञता व्यक्त करता। हमारे बीच ऐसा संवाद चलता ही रहता।

मुझे उनके निजी जीवन के बारे में प्रामाणिकता से ज्यादा जानकारी नहीं है। वे विवाहित थे अथवा नहीं मुझे पता नहीं। कारण कि यह मेरी प्रकृति/प्रवृत्ति है कि मैं किसी भी व्यक्ति के बारे में जैसा वह मेरे समक्ष प्रगट प्रत्यक्ष होता है उससे दीगर जानने की इच्छुक नहीं रहता। यहाँ तक कि जाति तक न पूछता हूँ न जानने की उत्कंठा रहती है। जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान...! वे संभवतः कायस्थ थे। मीडिया में उनके वैवाहिक स्थिति को लेकर भ्रम सा है। कहीं लिखा है कि वे अविवाहित रहे तो कहीं लिखा है कि उनके पुत्र ने उन्हें मुखाग्नि दी।

जो भी हो उनके अवसान से लोकप्रिय विज्ञान लेखन में जो रिक्ति सहसा आ गयी है, कभी पूरी नहीं हो पायेगी। लोकप्रिय विज्ञान लेखन की आजीवन धूमी रमाये प्रयाग संगम के इस सन्त को शत शत नमन।

meghdootmishra@gmail.com

शुकदेव प्रसाद ने 'मनोरमा' के लिए एक लेख मुझे डाक से भेजा था, नवीनता का पुट लिए हुए वह लेख मुझे पसंद आया। मैंने उन्हें लिख भेजा कि आप मुझे ऐसे लेखों की एक सूची भेजें जो आप मेरे लिए लिख सकते हैं। फिर एक दिन वह मेरे दफ्तर में आए। किसी ने पूछा कि अमरकांत जी से मिलना है। उसने इशारा किया और वह मेरी टेबल के सामने आ उपस्थित हुए, 'नमस्कार, मैं विज्ञान लेखक, शुकदेव प्रसाद'। उस शख्स को देखते ही बेसाख्ता मेरे मुँह से निकला - 'अरे, तुम तो लड़के हो, मैं तो तुम्हें यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर समझता था।'

- अमरकांत

उन्होंने बिना किसी बाहरी मदद के अपने बूते लगातार संघर्ष करते हुए जो सृजन किया है वह कभी-कभी अविश्वसनीय लगता है। ऐसे में कोई भी थक सकता है। पर उन्हें न थकने का अधिकार है, न मोहलत लेने का। उन्होंने अपने को गंभीरता से लिया है इसलिए उनका दायित्वबोध और सृजन का आनन्द उन्हें कभी चैन से तो बैठने देगा नहीं। पर अब समय आ गया है कि परिमाण से अधिक गुणात्मक छलांग पर जोर दिया जाए। सदियों के वर्चस्व के बाद अब विज्ञान प्रश्नेय हो गया है। अब उसे रामबाण समझना मुश्किल है। विज्ञान का सत्ता का दास और विध्वंस का वाहक होना उसकी अपर्याप्तता की ओर संकेत कर रहा है। इन प्रश्नों से दो-दो हाथ करने में भी शुकदेव प्रसाद से अधिक कौन सक्षम होगा - विशेषकर इसलिए कि वह विश्लेषक ही नहीं सर्जक भी हैं।

- प्रो.लाल बहादुर वर्मा

विज्ञान लेखन से विज्ञानकथा कोश

वाया शुकदेव प्रसाद
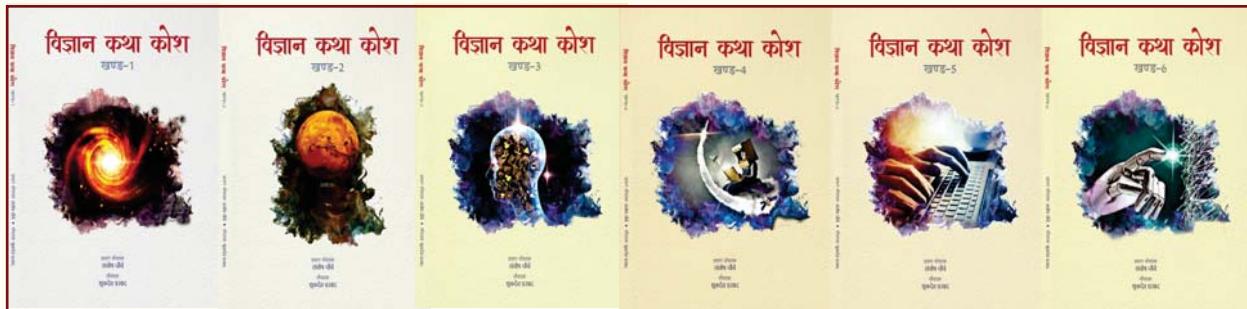
ज़ाहिद ख़ान

आईसेक्ट पब्लिकेशन ने बीते कुछ सालों में कई महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट 'कथा मध्य प्रदेश' (छह खंड), 'कथादेश' (अठारह खंड) और 'कथा भोपाल' (चार खंड) अपने ज़िम्मे लिए हैं और इन प्रोजेक्ट को बड़े ही कामयाबी के साथ अंज़ाम तक पहुँचाया है। 'विज्ञान कथा कोश' इन्हीं महत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट की नवीनतम कड़ी है। छह खंडों में प्रकाशित इस अनूठे कोश के संपादन की भी ज़िम्मेदारी संतोष चौबे ने ही निभाई है, जो कोश के प्रधान संपादक हैं। वहीं संपादक हैं, जाने-माने विज्ञान संचारक लेखक शुकदेव प्रसाद। जिन्होंने अथक मेहनत, लगन और कल्पनाशीलता से यह कोश तैयार किया है। अफ़सोस, शुकदेव प्रसाद पिछले महीने हमसे हमेशा के लिए जुदा हो गए। 23 मई को उनका इलाहाबाद में निधन हो गया। शुकदेव प्रसाद, खुद एक बेहतरीन विज्ञान कथा लेखक थे। सातवें दशक में उनकी 'वसुदैव कुटुम्बकम' और 'रोबो मेरा दोस्त' जैसी कहानियाँ देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं थीं। कोश में उनकी इन कहानियों के अलावा 'किम् आश्चर्यम्', 'अपने-अपने आकाश' शामिल हैं। शुकदेव प्रसाद पूरी ज़िंदगी विज्ञान केन्द्रित लेखन करते रहे। विज्ञान कथाओं समेत उन्होंने विज्ञान से जुड़े अनेक मसलों पर पाँच हज़ार से ज़्यादा लेख लिखे। यह कहानियाँ और लेख न सिर्फ़ देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए, बल्कि इन पर पर्याप्त चर्चा भी हुई। मिसाल के तौर पर उनकी कहानी 'हिमीभूत' जो विकिरणशीलता क्षति पर आधारित है, जिसके चलते न्यूक्लियर पावर प्लांट बंद हो जाता है। जब उन्होंने यह कहानी लिखी, तो पूरी दुनिया में इस तरह का कोई वाक़्या पेश नहीं आया था। लेकिन बाद में माइल आइलैंड, चेरनोबिल, फुकुशिमा आदि न्यूक्लियर पावर प्लांट में गड़बड़ियां हुईं, विस्फोट हुए और हज़ारों लोगों की जान चली गई। ज़ाहिर है कि यह अपने समय से पहले की कहानी थी। शुकदेव प्रसाद ने पहले ही भांप लिया था कि इस टेक्नॉलॉजी के फ़ायदे हैं, तो कुछ नुक्सान भी। इससे आगे चलकर हादसे भी पेश आ सकते हैं।

शुकदेव प्रसाद ने डेढ़ सौ से ज़्यादा विज्ञान आधारित किताबों का लेखन एवं संपादन किया। यही नहीं 'विज्ञान भारती', 'विज्ञान वैचारिकी' और 'पर्यावरण दर्शन' जैसी उत्कृष्ट पत्रिकाओं का संपादन भी किया। विज्ञान लेखन उनके लिए महज शौक नहीं, बल्कि एक मिशन था। देशवासियों में वे वैज्ञानिक सोच पैदा करना चाहते थे। अपने लेखन, संपादन और किताबों के ज़रिए उन्होंने यह काम बखूबी किया। विज्ञान लेखन में विशिष्ट योगदान के लिए शुकदेव प्रसाद को कई राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों एवं पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। उन्हें मिलें पुरस्कारों एवं सम्मानों की एक लंबी फेहरिस्त है। जिसमें कुछ अहम सम्मान हैं-'साइंटिस्ट ऑफ टुमारो अवार्ड' (एनसीईआरटी, साल 1975), 'उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कार' (साल 1980, 81, 82, 83 और 84), 'विक्रम साराभाई पुरस्कार' (अंतरिक्ष विभाग, भारत सरकार साल 1984), राष्ट्रीय बाल साहित्य पुरस्कार (एनसीईआरटी, साल 1986), डॉ. होमी भाभा (परमाणु

ऊर्जा विभाग, भारत सरकार साल 1986), सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार (साल 1986), विज्ञान और प्रौद्योगिकी पुरस्कार (विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार साल 1987, 88, 89 और 90), 'कौटिल्य पुरस्कार' (योजना आयोग, भारत सरकार 1988) और राजभाषा पुरस्कार (रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1996)।

आइए फिर वापिस लौटते हैं, 'विज्ञान कथा कोश' पर। अपनी भूमिका में प्रधान संपादक संतोष चौबे ने 'विज्ञान कथा कोश' प्रकाशन के पीछे के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''विश्व रंग के प्रारंभिक संकल्पों में से एक था हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन को प्रोत्साहन देना तथा अब तक हुए विज्ञान कथा लेखन, कथा अनुवादों को सुचिंतित रूप से पाठकों को समक्ष प्रस्तुत करना।'' ज़ाहिर है 'विज्ञान कथा कोश' के ज़रिए उन्होंने अपने इस संकल्प को ही पूरा किया है। कोश वाक़ई बेमिसाल बन गया है। जिसमें न सिर्फ़ दुनिया भर के बड़े विज्ञान कथा लेखकों की कहानियाँ शामिल की गई हैं, बल्कि हिंदी समेत भारतीय भाषाओं में हुए विज्ञान कथा लेखन को भी जगह मिली है। विज्ञान-कथा लेखन की शुरुआत आज से दो सदी पूर्व मेरी डब्ल्यू शेली के उपन्यास 'फ्रैंकेस्टीन' से मानी जाती है। इसके बाद फ्रांस में जूल्स वर्न और ब्रिटेन में एचजी वेल्स ने विज्ञान-कथा लेखन को साहित्य की एक नई विधा के तौर पर प्रतिष्ठित किया। कोश के पहले खंड में इन सभी की कहानियों के अलावा अंबिका दत्त व्यास की कहानी 'आश्चर्य वृत्तांत' प्रकाशित की है, जो हिंदी की पहली विज्ञान कहानी मानी जाती है। यही नहीं प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु की बांग्ला भाषा में लिखी कहानी 'लापता तूफ़ान' भी शामिल है। इस खंड में कुल चौदह कहानियाँ हैं, जिसमें दस कहानियाँ विदेशी विज्ञान कथा लेखकों की हैं। अच्छी बात यह है कि कहानी के आख़िर में कहानी का मूल नाम, वह कब प्रकाशित हुई और इसका रूपांतर या अनुवाद किसने किया, उसका स्पष्ट ज़िक्र है। पाठक यदि चाहे, तो वह इसके ज़रिए मूल साहित्य तक पहुँच सकता है। यही एक अच्छे कोश की निशानी भी होती है।

संपादकों ने 'विज्ञान कथा कोश' को छह खंडों 'समारंभ', 'तदन्तर', 'वातायन', 'बाल विज्ञान कथाएँ', 'समकालीन विज्ञान कथाएँ (एक)' और 'समकालीन विज्ञान कथाएँ (दो)' में बांटा है। विषय के मुताबिक ही इन खंडों में कहानियों को संकलित किया गया है। संपादक शुकदेव प्रसाद ने हर खंड में कहानियों से पहले अपनी एक सुचिंतित टिप्पणी की है, जो विषय से संबंधित है। इन टिप्पणियों में उनकी वैज्ञानिक सोच स्पष्ट दिखलाई देती है। इन टिप्पणियों से 'विज्ञान कथा कोश' की दिशा भी निर्धारित हो जाती है, जो संपादक ने पहले ही तय कर दी है। ''बताते चलें कि पुराण, उपनिषद, वेदादि संहिताएं, रामायण, महाभारत ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं हैं। अतः इन ग्रंथों में विज्ञान की तलाश करना मूर्खतापूर्ण प्रयास है, जिसका विज्ञान निषेध करता है।'' ('अथातो विज्ञान गल्प जिज्ञासा', पेज-7, पहला खंड) मौजूदा दौर में जब हमारे यहाँ रोज़-ब-रोज़ सत्ता के शीर्ष स्थानों पर बैठे लोग भी कपोल कल्पनाओं को विज्ञान की तरह पेश करते हैं, यही नहीं हर अविष्कार के बीज पुराण, उपनिषद आदि धार्मिक ग्रंथों में खोजते हैं, शुकदेव प्रसाद का यह कथन साहसिक ही कहा जाएगा।

विज्ञान कथाएं लिखते समय किस बात का ख़्याल रखा जाए और विज्ञान कथाएँ क्या भविष्य का दिग्दर्शन कराती हैं? इस बारे में शुकदेव प्रसाद का मानना है, ''विज्ञान कथाओं में विज्ञान के मान्य सिद्धांतों का अतिरेक नहीं होना चाहिए,

ज़ाहिद ख़ान पिछले डेढ़ दशक से विज्ञान तथा समसामयिक विषयों पर अपनी कलम चला रहे हैं। सामयिक विषयों और मसलों पर उनकी पैनी नज़र होती है जिसके चलते जनसत्ता, राष्ट्रीय सहारा, दैनिक जागरण, प्रभात खबर, दैनिक ट्रिब्यून, नवभारत टाइम्स, अमर उजाला, लोकमत समाचार, हिमाचल दस्तक, पीपुल्स समाचार, डेली न्यूज़, दैनिक देशबंधु, पूर्वांचल प्रहरी, हरिभूमि, जनवाणी, आदि के स्तम्भकार हैं। उन्होंने हिन्दी की तमाम पत्रिकाओं में नियमित लेखन किया है। 'आज़ाद हिन्दुस्तान में मुसलमान', 'संघ का हिन्दुस्तान', 'तरक्की पसंद तहरीक के हमसफ़र', 'तरक्की पसंद तहरीक के रहगुज़र' 'फैसले जो नज़री बन गये' और 'आधी आबादी आधा सफ़र' आपकी चर्चित किताबें हैं। मुंबई की सामाजिक संस्था पापुलेशन फर्स्ट और यूएनएफ पीए यूनेस्को ने उन्हें तीन बार लाडली मीडिया एंड एडवर्टाईजिंग अवार्ड फॉर जेंडर सेंसटीविटी से सम्मानित किया है। इसके अतिरिक्त वे वागीश्वरी पुरस्कार और टर्निंग इंडिया सम्मान से सम्मानित हैं।

अतिरंजना होनी चाहिए मगर उसकी भी एक सीमा रेखा है, उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए और यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विज्ञान कथाएं भविष्य का दिग्दर्शन नहीं कराती हैं, अन्यथा विज्ञान कथाकार अविष्कारक ही बन जाते।'' ('अथातो विज्ञान गल्प जिज्ञासा', पेज-9, पहला खंड) शुकदेव प्रसाद के इस कथन से आंशिक नाइत्तेफ़ाक़ी है। यह बात सच है कि विज्ञान कथाकार, अविष्कारक की भूमिका में नहीं आ सकता। लेकिन विज्ञान कथाएं कई बार भविष्य का दिग्दर्शन ज़रूर कराती हैं। इस संदर्भ में शुकदेव प्रसाद ने खुद अपनी एक कहानी 'हिमीभूत' का ज़िक्र किया है, तो राहुल सांकृत्यायन की फंतासी 'बाईसवीं सदी' की तारीफ़ करते हुए लिखा है, ''इस गल्प की बहुत-सी बातें राहुल जी के जीवन में ही सच साबित हुईं।... राहुल जी प्रज्ञा पुरुष थे, उन्होंने फोटो फोन, मॉडेम और इंटरनेट जैसी द्रुततम संचार प्रणालियों की परिकल्पना 'बाईसवीं सदी' में ही कर ली थी।'' ('अथ विज्ञान गल्पेतिहास', पेज-11, 12 दूसरा खंड)

शुकदेव प्रसाद, विज्ञान कथाओं के उत्स की खोज तिलस्मी या कि जासूसी साहित्य में करने के ख़िलाफ़ हैं। अपनी इसी भूमिका में उनकी स्थापना है, ''मैं इस बात से कतई सहमत नहीं हूँ कि भारतीय विज्ञान कथाओं के उत्स की खोज तिलस्मी या कि जासूसी साहित्य में करनी चाहिए।......'आश्चर्य वृतांत' विशुद्ध रूप से विज्ञान गल्प था, जो तिलस्मी और जासूसी प्रभावों से सर्वथा उन्मुक्त था।'' ('अथ विज्ञान गल्पेतिहास', पेज-14 दूसरा खंड) अपने इस कथन को वे आगे चलकर उदाहरण के साथ साबित करते हैं कि बांग्ला में विज्ञान गल्प का उन्मेष पहले ही हो गया था।

शुकदेव प्रसाद, विज्ञान कथाओं के उत्स की खोज तिलस्मी या कि जासूसी साहित्य में करने के ख़िलाफ़ हैं। अपनी इसी भूमिका में उनकी स्थापना है, ''मैं इस बात से कतई सहमत नहीं हूँ कि भारतीय विज्ञान कथाओं के उत्स की खोज तिलस्मी या कि जासूसी साहित्य में करनी चाहिए।... 'आश्चर्य वृत्तांत' विशुद्ध रूप से विज्ञान गल्प था, जो तिलस्मी और जासूसी प्रभावों से सर्वथा उन्मुक्त था।'' ('अथ विज्ञान गल्पेतिहास', पेज-14 दूसरा खंड) अपने इस कथन को वे आगे चलकर उदाहरण के साथ साबित करते हैं कि बांग्ला में विज्ञान गल्प का उन्मेष पहले ही हो गया था। जगदीश चंद्र बसु ने 'तूफ़ान पर विजय' शीर्षक से पहला विज्ञान गल्प साल 1897 में लिखा था। विज्ञान गल्पकारों से शुकदेव प्रसाद की अपेक्षा है, ''विज्ञान गल्पकारों का दायित्व रंजन-मनोरंजन के साथ अंधकार की कारा का निवारण भी करना है।'' कोश के चौथे खंड की भूमिका में वे विज्ञान गल्पकारों को उनकी ज़िम्मेदारी का एहसास कराते हुए कहते हैं, ''वैज्ञानिक तथ्यों की अतिशय अतिरंजना करने वाली कथाएं या कि अविज्ञान को स्थापित करती प्रतीत होने वाली कथाएं बच्चों के ज्ञान को सर्वर्धित तो नहीं करतीं, अपितु उन्हें दिग्भ्रमित अवश्य करती हैं।'' ('बाल विज्ञान कथाओं के निहितार्थ एवं यथार्थ', पेज-12, चौथा खंड) शुकदेव प्रसाद, विज्ञान कथा लेखकों द्वारा अक्सर पृथ्वेतर लोकों में जीवन की खोज करने की प्रवृति को भी सही नहीं मानते। उनका कहना है, ''अब विज्ञानगल्पों के क्षेत्र में ऐसी कल्पना लोक की कहानियों का तिरोहन हो जाना ही श्रेयस्कर है। इसी में विज्ञान कथाओं की अभिवृद्धि होगी और नाना रंग रूपों में पाठकों का रंजन-मनोरंजन ही नहीं, अपितु उनके ज्ञान में नए-नए गवाक्ष भी खोलेंगी।'' ('पृथ्वेतर लोकों में (जीवन ?) की खोज', पेज-13, पांचवा खंड)

कोश के आख़िरी खंड 'समकालीन विज्ञान कथाएं-2' की भूमिका में शुकदेव प्रसाद ने आनुवांशिक इंजीनियरी के सकारात्मक और बदनुमा पहलुओं को तफ़्सील से बयान किया है। भूमिका के अंत में वे सभी को आगाह करते हुए कहते हैं, ''आनुवांशिक इंजीनियरी के रूप में जो महान शक्ति हमारे हाथों में आ गई है, उसका उपयोग मानवता के कल्याण में ही किया जाना श्रेयस्कर होगा, अन्यथा हम अपने ही द्वारा आविष्कृत शिल्प से अपना ही संहार कर बैठेंगे।'' ('उपेक्षणीय नहीं है विज्ञान के मूल सिद्धांतों की अवमानना !', पेज-22, छठवां खंड) 'विज्ञान कथा कोश', शुकदेव प्रसाद का आख़िरी बड़ा काम था और उन्होंने इस कोश को तैयार करने में जो मेहनत की वह कोश में साफ़ दिखाई देती है। शुकदेव प्रसाद, आज भले ही हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन विज्ञान के क्षेत्र में किया गया उनका बेजोड़ काम हमेशा जिंदा रहेगा। वे अपनी विज्ञान कथाओं, लेखों और किताबों से हमारे बीच रहेंगे। आईए फिर वापिस लौटते हैं, 'विज्ञान कथा कोश' पर। कोश के दूसरे खंड 'तदन्तर' में विज्ञान कथा का विकास देखने को मिलता है। इस खंड में जूल्स वर्न, एचजी वेल्स, कारेल चापेक एवं आइजक आसिमोव जैसे दिग्गज विदेशी विज्ञान कथा लेखकों के अलावा केशव प्रसाद सिंह, अनादिधन बंधोपाध्याय, हरिकृष्ण देवसरे, राहुल सांकृत्यायन आदि भारतीय साहित्यकारों की विज्ञान कथाएँ शामिल हैं। तीसरा खंड 'वातायन', विश्वप्रसिद्ध विज्ञान कथाओं का दस्तावेज है जिसमें सभी कहानियाँ विदेशी रचनाकारों की हैं। पाठकों का यह जानकर तअज्जुब होगा कि दोस्तोयवस्की, अल्बर्ट कामू, जार्ज आरवेल, सर आर्थर कानन डॉयल और आर्थर सी. क्लार्क जैसे बड़े कथा लेखकों ने भी विज्ञान कथाएँ लिखी हैं। दीगर विषयों की तरह उन्होंने उसी महारत से विज्ञान विषयों पर अपनी कलम चलाई है। बहरहाल, इस खंड में कुल 27 कहानियाँ शामिल हैं। जिनके विषय भी बड़े दिलचस्प हैं। इन कथाओं को पढ़कर, इनकी लोकप्रियता की वजह मालूम चलती है।

चौथा खंड बाल विज्ञान कथाओं पर केन्द्रित है। जिसमें ज़्यादातर कहानियां बाल मनोविज्ञान के इर्द-गिर्द हैं। इस खंड में चार विदेशी कथाकार हैं। बाकी कहानियाँ भारतीय साहित्यकारों की हैं। इस फेहरिस्त में मनोहर वर्मा, रमेश दत्त शर्मा, मृदुला हालन और देवेन्द्र मेवाड़ी वगैरह शामिल हैं। इन कहानीकारों की कहानियाँ किसी भी स्तर पर विदेशी विज्ञान कथा लेखकों से कमतर नहीं हैं। बड़े ही सिद्धहस्त तरीके से यह कथाकार बाल मनोविज्ञान के मद्देनज़र अपनी कहानियाँ रचते हैं। संपादकद्वय ने अपनी ओर से पूरी कोशिश की है कि इस जोनर की प्रतिनिधि कहानियां इसमें शामिल हों। पाँचवा एवं छठवा खंड समकालीन विज्ञान कथाओं पर आधारित है। जिसमें अरविंद मिश्र, डॉ. संतोष चौबे, अमृतलाल वेगड़, डॉ. स्वाति तिवारी, बुशरा अलवेरा, आइवर यूशिएल, सुभाष लखेड़ा, जीशान हैदर ज़ैदी और जाकिर अली 'रजनीश' आदि की कहानियां शामिल हैं। जिनमें से अधिकांश आज भी सक्रिय हैं और उसी मनोयोग एवं निष्ठा से विज्ञान कथाएँ लिख रहे हैं। लेकिन इन खंडों में एक बात खटकती है, किसी विदेशी विज्ञान-कथा लेखक की कथा इनमें शामिल न होना। जबकि इस कालक्रम में दुनिया भर में बेशुमार विज्ञान कथाएँ लिखी गई होंगी। यदि इन विज्ञान-कथा लेखकों की कहानियाँ इस खंड में शामिल होतीं, तो दुनिया भर की विज्ञान कथाओं का एक मुकम्मल परिदृश्य पाठकों को सामने आता। पाठक कहानियों को पढ़कर, इस नतीज़े पर पहुँचते कि विदेशी और भारतीय विज्ञान-कथा लेखकों के विज़न से लेकर कंटेंट, भाषा शैली और शिल्प में क्या बड़ा फ़र्क़ है। दो सदी गुज़रने के बाद, भारतीय विज्ञान-कथा लेखकों ने विज्ञान कथा लेखन में उत्तरोत्तर क्या प्रगति की है ? विज्ञान कथा लेखन में वे कहाँ पीछे हैं?

'विज्ञान कथा कोश' की लंबी भूमिका विज्ञान कथा लेखक देवेन्द्र मेवाड़ी ने प्रधान संपादक संतोष चौबे के साथ मिलकर लिखी है। इस भूमिका में प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. जयंत विष्णु नार्लीकर के मराठी भाषा में विज्ञान-कथा लेखन के क्षेत्र में किए गए अवदान पर टिप्पणी है, लेकिन उनकी कोई कहानी कोश में शामिल नहीं है। ज़ाहिर है कि यह एक बड़ी चूक है। वहीं कोश में कहानी के साथ-साथ संबंधित लेखक का संक्षिप्त परिचय भी रहता, तो वह शोधार्थियों के बेहद काम का होता। बावजूद इसके 'विज्ञान कथा कोश' साहित्यिक-शैक्षणिक-वैज्ञानिक जगत में एक ऐसा कारनामा है, जिसमें हमेशा विद्यार्थियों और शोधार्थियों की दिलचस्पी रहेगी। यदि इस कोश में कहानियों के साथ तस्वीरों एवं रेखांकन का भी इस्तेमाल होता, तो वह और प्रभावी होतीं। इनका असर उनके दिल-ओ-दिमाग पर लंबे समय तक रहता। प्रधान संपादक के मुताबिक 'विज्ञान कथा कोश' का यह महत्वाकांक्षी प्रोजेक्ट तक़रीबन तीन सालों में पूरा हुआ। जिसमें अनेक लोगों की सहभागिता रही। इसी सिलसिले में कोश के सह-संपादक मोहन सगोरिया और 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' की संपादक डॉ. विनीता चौबे के नाम का ज़िक्र ज़रूरी है, जिन्होंने इस पूरे प्रोजेक्ट में संपादकों के साथ मिलकर कथाओं को इकट्ठा करने और शोध के काम में हाथ बँटाया। ज़ाहिर है कि यह एक श्रमसाध्य कार्य था, जिसमें कुछ ग़ल्तियां और त्रुटियाँ रह जाना स्वभाविक है। जब भी इस कोश का दूसरा संस्करण आएगा, उसमें इनको आसानी से दुरुस्त किया जा सकता है। क्योंकि, अच्छे से अच्छे काम में भी सुधार की संभावना हमेशा रहती है। और इन सुधारों से ही हम सर्वोत्तम की ओर जाते हैं। फिर यह तो बात, 'विज्ञान कथा कोश' की है।

jahidk.khan@gmail.com
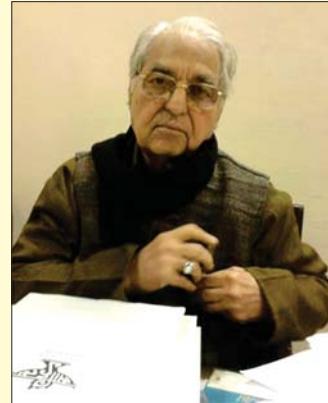
शुकदेव जी की दो विशेषाताएँ बहुत ध्यान आकर्षित करती हैं -एक तो यह कि उन्होंने इतनी डिग्रियों के बावजूद नौकरी नहीं की। विज्ञान और वैज्ञानिक लेखन को व्यवसाय के रूप में न लेते हुए मिशन के रूप में लिया। दूसरा उन्होंने अपने लेखन का माध्यम हिन्दी चुना। जबकि आज लोग अंग्रेजी में लिखने को सम्मान और आय दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण मानने लगे हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि इसके जरिए वे रातों-रात अमीर हो जायेंगे और दुनिया की बिरादरी में बैठने लायक हो जाएंगे, तब राष्ट्रभाषा में विज्ञान संबंधी आलेखन सचमुच एक साहस और मिशन ही है। यह भी देश सेवा का एक जज़्बा है, जो इस अर्थयुग में निरंतर छीज रहा है।

- डॉ.प्रभाकर श्रोत्रिय

एक उजाला-सा हुआ था
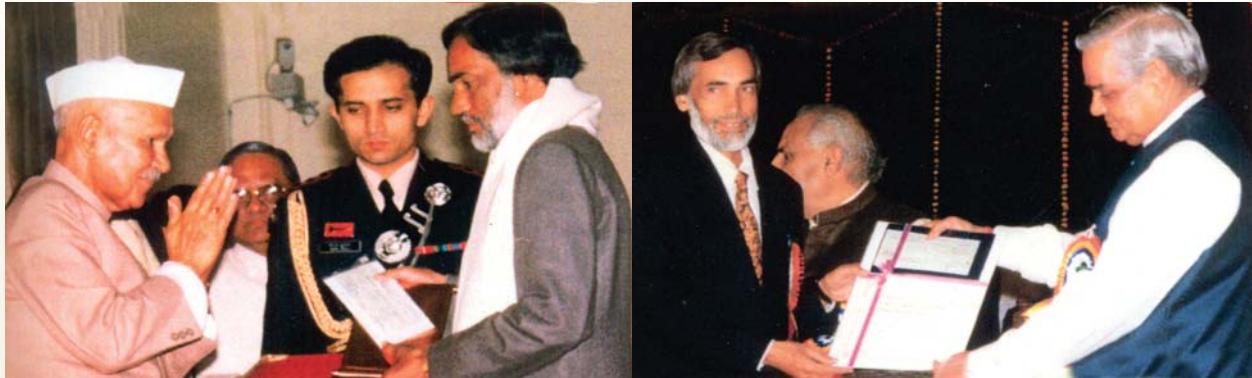
मोहन सगोरिया

विज्ञान लेखन के पर्याय शुकदेव प्रसाद जी के बारे में कुछ कहना या लिखना मेरे लिए कटघरे में खड़े होने जैसा है। आज, जबकि वे भौतिक रूप से हमारे बीच नहीं हैं - उन्हें जस का तस याद करना बहुत कठिन और मार्मिक कर्म है। उनके बारे में कहते हुए उनके अतिरेक से बच पाना भी लगभग असंभव ही होगा।

यूँ तो मेरा उनसे संवाद एक दशक पूर्व आरंभ हुआ किंतु अंतरंग संवाद पिछले पाँच वर्षों में अधिक हुआ। विज्ञान लेखन को लेकर, साहित्य को लेकर, समकालीन परिदृश्य को लेकर, घर-परिवार और मित्रों के लेकर उनसे हुए संवाद एक अंतहीन गाथा की तरह है। पिछले पाँच वर्ष 'विज्ञान कथा कोश' पर काम करते हुए उनसे इतनी बातें हुईं कि अगर उन क्षणों का हिसाब लगायें तो वह घंटों, दिनों या महीनों में न होकर वर्षों का कालखंड होगा। दिन हो या रात, सुबह हो या शाम - कभी भी मोबाइल बज उठता। अब तो मेरी बच्चियों को भी उनका मोबाइल नंबर याद हो गया था - नाइन फोर वन फाइव थ्री फोर सेवन जीरो टू सेवन। मेरा फोन बजते ही वे कह उठतीं - इलाहाबाद वाले दादा का फोन आया है।

''हाँ, दादा प्रणाम!'' मैं कहता।

''हाँ दादा'', वे भी उसी रौ में कहते और फिर शुरू हो जाता उनके कामों पर संवाद।

हमारे घर में 'दादा' शब्द - संबोधन बड़े भाई के लिए प्रयुक्त होता है जो बुजुर्गों के लिए भी आरक्षित है। इस दादा शब्द को आधार बनाकर मैंने शुकदेव प्रसाद पर एक लेख लिखा था; वह कुछ इस तरह था -

शुकदेव प्रसाद जी से जब-जब भी बातें हुईं- एक ठहाका, एक खिलखिलाहट, गर्मजोशी, छेड़-छाड़, विनोद और आत्मीयता का विरल रसायन दिलो-दिमाग को उनसे जोड़े रहा। कभी लगा ही नहीं कि वे हमउम्र न हों। एक लम्बी, मुकम्मल और लगभग संपूर्ण यात्रा कर चुके व्यक्ति का यूँ अंतराल पाटकर एक ही क्षण में आप तक पहुँचना और अंतरंग हो जाना कैसे रोमांचित करता है यह उनसे बात करके ही जाना जा सकता है। वे बातें करते हुए इतने अंतरंग हो जाते हैं कि उनसे किसी भी विषय पर संवाद संभव है। एक ओर वे सारे काम, उपलब्धि और मान को दरकिनार करके मुख़ातिब होते तो वहीं उनका स्वाभिमान छलक-छलक जाता है। प्रेम और अपनत्व में मान के तिरोहित होने तथा स्वाभिमान का एक सिरा पकड़े रहने की यह रस्साकसी निरंतर बनी रहती है। इसलिए उनके बारे में लिखना जोख़िम से कम नहीं। बावजूद इसके मुझे उनके बारे में कुछ कहना है। अपने सारे संकट और संकोच को एक तरफ करते हुए यह परेशानी मोल लेकर भी कि मैं उन पर कितना और क्या लिख पाऊँ। यह कहना होगा कि एक व्यक्ति के बारे में उससे पृथक होकर सब कुछ कह पाना संभव नहीं। संभवतः इसलिए ही आत्मकथाएं लिखी जाती रही हैं और उनमें भी कितना क्या सच होगा यह दूसरे सिरे से चर्चा का विषय रहा आया। इनमें जस का तस, सच हो और सच के सिवा कुछ न हो, ऐसा हो- मुझे नहीं लगता।

यहाँ मेरा संकोच थोड़ा दूजे किस्म का है। एक तो उनका रचना संसार, विज्ञान से लेकर अर्थशास्त्र, दर्शन, इतिहास और साहित्य तक फैला है, दूसरा मैं उनसे कभी मिला नहीं। जितना उन्हें जाना उनके लिखे हुए को पढ़कर और फोन पर बात करके। विज्ञान लेखकों में उनका गहरा मान तो है ही साहित्य में भी उन्हें चाहने वालों की फेहरिस्त बहुत लम्बी है जिनमें अनुपम मिश्र, प्रभात शास्त्री, जयप्रकाश भारती, विभतिनारायण राय, दुर्गादत्त पांडेय, लाल बहादुर वर्मा, रवीन्द्र कालिया, प्रभाकर श्रोत्रिय, संतोष चौबे, दिनेश मिश्र, यश मालवीय अजामिल शामिल हैं। महादेवी वर्मा, सच्चिदानंद वात्स्यायन, विद्यानिवास मिश्र, अमरकांत, हरिकृष्ण देवसरे गुणाकर मुळे, कमलेश्वर, गिरिराज किशोर, डॉ. नगेन्द्र, आत्माराम, रमेश दत्त शर्मा, विजयदत्त श्रीधर आदि से उनका लम्बा वैचारिक विनिमय चलता रहा। प्रो.अली अहमद फातमी और डॉ.सालेहा रशीद जैसे उर्दू अदब के नामों ने उन पर बखूबी लिखा।

दरअसल शुकदेव प्रसाद जी तक पहुँचने के पहले उनके आभामंडल से गुजरना होता है। उनके प्रकाश का वलय इतना वृहद है कि भौतिकी रूप में उन्हें जानने समझने की आकांक्षा को एक गहरी तपिश चाहिए। लगता है, जैसे वे प्रकाश से ही बने हों। प्रसिद्ध शायर निदा फ़ाज़ली के शेर से इस बात की तस्दीक होती है –

जिस्म बनने में उसे देर लगी
एक उजाला-सा हुआ था पहले।

यह उजाला ही उनके निर्माण की कथा व्यथा है।

जैसे पृथ्वी का निर्माण एक प्रकाश पुंज की तरह हुआ और फिर पृथ्वी ही क्यों ब्रह्मांड का हर एक पिंड इसी तरह निर्मित हुआ। यह वैज्ञानिक और कतिपय दार्शनिक दृष्टिकोण ही इस निर्मिति की ओर जाने में सहायक होगी। शुकदेव प्रसाद जी को मैं कभी ‘सर’ नहीं कहा पाया। उनके लिए जो मेरा संबोधन रहा वह ‘दादा’ है। उन्हें दादा पुकारना बड़ा भला और आत्मीय लगता है। यह शब्द उनके करीब ले जाता है। कभी मैंने उनसे पूछ भी नहीं कि वे इस शब्द की अर्थध्वनि में कहा तक जाते हैं और क्या अर्थ निकाल लेते हैं। पिता का पिता, एक वरिष्ठ नागरिक या बड़ा भाई। आखिर इस शब्द की अर्थध्वनि ऐसी ही है।

तो जब आप दादा से बात करते हैं तब बहुत ही अपनापा लगता है। वे सहज ही आपको सन सैंतालीस के पूर्व ले जाते हैं जहाँ उनके पिता अपनी विद्वता के चलते खासे लोकप्रिय रहे और उनकी मेधा को पहचानकर हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करते ही उन्हें एक सरकारी महकमे में उच्च पद पर आसीन कर दिया गया। किंतु पिता भी खांटी भारतीय और ईमानदार व्यक्ति थे। उन्हें कोर्ट-कचहरी और कानून के दाँव-पेंच रास न आए। सब कुछ छोड़छाड़ कर उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त की। फिर उन्होंने शिक्षक बनना ही श्रेयष्कर समझा। एक हाईस्कूल पास लड़के को इस सरकारी नौकरी की पेशकश की भी एक कहानी है जो आप दादा के ही मुँह से सुनें तो अच्छा लगेगा।

‘मेरे पिता की मेधा अत्यंत प्रखर थी। उस समय हाई स्कूल या इंटर की परीक्षाओं में पाँच ही विषय ले सकते थे जिसका आपके परीक्षा परिणाम पर कोई अंतर नहीं पड़ता, अंकतालिका में मात्र उन अंकों का उल्लेख किया जाता था, उनके अंक जोड़े नहीं जाते थे।’

मेरे पिता ने हाईस्कूल में आठ विषय लिए और जब परीक्षा परिणाम आया तो वह भी विस्मित रह गए। उन्होंने हाई स्कूल परीक्षा प्रथम श्रेणी में तो उत्तीर्ण की ही थी साथ ही सभी आठ विषयों में उन्होंने विशेष योग्यता (75 प्रतिशत से अधिक अंक) अर्जित की

महत्वपूर्ण समकालीन कवि और लेखक। देश के विभिन्न संस्थानों, प्रकाशनों व अखबारों में उच्च पदों पर कार्य। शासकीय व गैर शासकीय संस्थानों में नौकरियाँ कीं। देश भर की शीर्षस्थ पत्रिकाओं व पत्रों में रचनाएं प्रकाशित। साक्षात्कार, पल-प्रतिपल, रचना समय, शब्द संगत, समझ झरोखा, उत्तर संवाद और समय के साखी के संपादन से संबद्ध रहे। मासिक पत्रिका ‘प्रबुद्ध भारती’ का दो वर्ष तक संपादन किया। कथाकार-विज्ञानकर्मी संतोष चौबे के उपन्यास के केन्द्रित कृति ‘संगत’ और विज्ञान कथा संचयन ‘सुपरनोवा रहस्य’ का संपादन। संतोष चौबे और शुकदेव प्रसाद द्वारा संपादित ‘विज्ञान कथा कोश’ के सह-संपादक। चार खंडों में विज्ञान कविता कोश का संपादन। ‘जैसे अभी-अभी’ और दिन में मोमबत्तियां प्रकाशित कृतियाँ। रजा पुरस्कार, शिवना सम्मान, लक्ष्मण प्रसाद स्मृति मंडलोई सम्मान और दिव्य सम्मान।

विज्ञान लेखकों में उनका गहरा मान तो है ही साहित्य में भी उन्हें चाहने वालों की फेहरिस्त बहुत लम्बी है जिनमें अनुपम मिश्र, प्रभात शास्त्री, जयप्रकाश भारती, विभूतिनारायण राय, दुर्गादत्त पांडेय, लाल बहादुर वर्मा, रवीन्द्र कालिया, प्रभाकर श्रोत्रिय, संतोष चौबे, दिनेश मिश्र, यश मालवीय अजामिल शामिल हैं। महादेवी वर्मा, सच्चिदानंद वात्स्यायन, विद्यानिवास मिश्र, अमरकांत, हरिकृष्ण देवसरे गुणाकर मुळे, कमलेश्वर, गिरिराज किशोर, डॉ. नगेन्द्र, आत्माराम, रमेश दत्त शर्मा, विजयदत्त श्रीधर आदि से उनका लम्बा वैचारिक विनिमय चलता रहा।

थी। मेरे कुछ अध्यापकों ने मुझे जब इस विस्मयकारी प्रकरण से अवगत कराया तो हठात मैंने अपने पिता से अपनी जिज्ञासा का शमन करने की ज़िद की। फिर उन्होंने अपना सर्टिफिकेट मेरे हाथों में सौंपा, जिसकी आखिरी लाइनें कुछ इस प्रकार थीं – "Passed first class first with distinction in all eight above mentioned subjects." दादा ने इसे मुझसे एक बातचीत के अवसर पर साक्षा किया था। जिसको सुनकर मैं हतप्रभ रह गया था।

दादा बताते हैं कि बचपन में वे बेहद शर्मीले और संकोची प्रवृत्ति के थे। एकाकीपन उन्हें इसलिए भाता था कि चीजों को नए सिरे से देखने का अवकाश उन्हें इसी एकांत में मिलता था। वे अलग-थलग रहते थे और अपनी अलग ही पहचान के लिए कटिबद्ध थे।

आज उनके नाम सैकड़ों प्रकाशन, पुरस्कार, सम्मान आदि जुड़े हैं जिसे देख मन भर-भर आता है। यह भराव उल्लास, हैरत और आनंद का है किंतु इस मुकाम तक पहुँचने की उनकी यात्रा को रेखांकित किया जाना चाहिए।

अलग से उनकी उपलब्धियाँ गिनाने से उनके मान-सम्मान में वृद्धि-अवृद्धि नहीं होगी क्योंकि जो वे हैं- वह हैं ही और रहेंगे भी। अस्तु कुछ बातें जो उनकी ओर हमें ले जाती हैं- पहली यह कि वे बहुत अपने से व्यक्ति हैं। अगर आपसे मिलें तो यूँ मिलेंगे कि आप दादा के ही होकर रह जाएं। न मिले तो मन में टीस रह जाएगी कि क्यों न मिल सके। दूसरी बात जो मिलने से ही संबद्ध है और आकर्षित करती है वह यह कि दादा ठेठ भारतीय मनुष्य हैं। चेहरे पर दाढ़ी, खिचड़ी बाल और भेदती आँखें। वे अपना सारा व्यवहार हिन्दी में करते हैं। अपनों से बातें करते हुए एक अपनत्व भरा विनोद और हल्की-फुल्की उलाहना जो कभी-कभार गालियों के रूप में होती, का उपयोग करना हम उनसे सीख कसते हैं। अभी कुछ दिन पहले उनका फोन आया। मैंने रिसीव भी किया किंतु कुछ तकनीकी गड़बड़ी के चलते मेरी आवाज़ उन तक नहीं पहुँची जबकि उनकी आवाज़ मुझे सुनाई दे रही है। वे किसी से संवादरत थे। कोई था जिन्हें वे समझाईश दे रहे थे और मुखातिब उनकी बात समझ नहीं रहा था। मुझे हँसी आ गई। रिसीवर रखकर मैं कोई पांच-सात मिनट हँसता ही रहा क्योंकि गाली देने के लहजे में एक इलाहाबादीपन और इस तरह की उलाहना थी कि जाओ मरो तुम नहीं समझ पा रहे तो हम क्या करें?

जब मैंने इस बावत कहा कि दादा किसे गाली दे रहे थे तो वे ऐसे ही लजा गए जैसे कृष्ण को माखन चोरी करते किसी ने पकड़ लिया हो।

एक तीसरी बात जो प्रभाकर श्रोत्रिय जी ने भी रेखांकित की, वह उनके किसी शासकीय सेवा में न जाने की है। हम विचार करें कि एक मनुष्य सिर्फ खेती और कागज की खेती के बल पर अपना जीवन कैसे निबाहता है... और सिर्फ निबाह ही नहीं उसे उज्ज्वल बनाता है। दादा ने ये सब किया।

चौथी बात मुझे यह भी लगती है कि अर्थशास्त्र, इतिहास, हिन्दी साहित्य और विज्ञान के अध्येता होने के बावजूद वे बार-बार प्रायोगिक जीवन पद्धति की ओर लौटते हैं। जैसे कृष्ण प्रेम की ओर, बुद्ध सत्य की ओर, गांधी अहिंसा की ओर, मार्टिन लूथर किंग शांति की ओर, मदर टेरेसा सेवा की ओर तथा ओशो ध्यान की ओर लौटते हैं। पंछियों की तरह इन सबका लौटना दादा के लौटने की तरह ही संबद्ध है।

एक आखिर बात और भी आकर्षित करती है वह यह कि वे नए लेखकों को अपने तई बहुत प्रोत्साहित करते हैं। उनका मानना है कि जो अभी है वह पुराना होगा ही। आने वाले समय में बहुत कुछ करने को अभी शेष है, जैसे अभी जो कुछ न किया गया, उसमें ही। दादा का वश चले तो वे नए लोगों की एक फौज ही बना लें, वे खुद पर चर्चा करने के लिए भी नए लोगों को आमंत्रित करते हैं और उनका स्वागत भी। अभी कुछ दिन पूर्व 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में एक लेख छपा था – कम्प्यूटर का जनक चार्ल्स बबाज?। लेख नये लेखक का था। चूँकि मैं इसके संपादन से संबद्ध हूँ तो उन्होंने मुझे फोन किया –''क्यों, सगोरिया ये बैबेज, बबाज कब हो गया?''
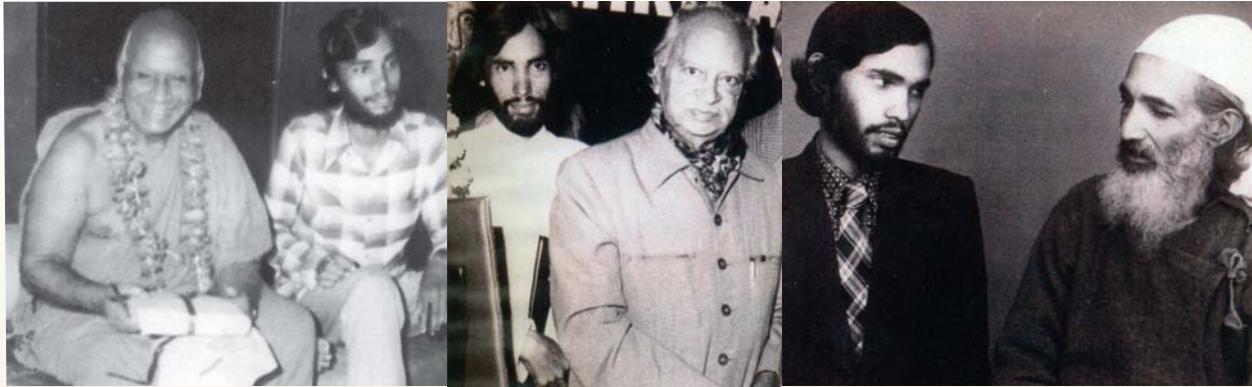
अपनी नैसर्गिकता के चलते ही वे विज्ञान साहित्य के भगीरथी स्वामी डॉ.सत्यप्रकाश सरस्वती, मुल्कराज आनंद और चिपको आंदोलन के प्रणेता सुंदरलाल बहुगुणा के अंतरंग हुए। वृक्षों, नदियों और पर्यावरण संरक्षण के लिए उन्हें महत्वपूर्ण लेखन किया।

''मतलब?''

''मतलब, चार्ल्स बैबेज होता है यार, बबाज नहीं। दूसरी बात यह कि बैबेज ने कम्प्यूटर नहीं बनाया सिर्फ कागज पर उसका काम था।''

''नहीं दादा, बैबेज तो मुझे पता था लेकिन लेखक का आग्रह था कि बबाज ही छापा जाये।''

''अब तुम आग्रह मानोगे या सही छापोगे?''

''पर दादा, आप भी तो लेखक से कह सकते हैं?''

''हाँ यार, पर वह बुरा मान जाएगा, बच्चा है।''

''बुरा मानेगा तो ग्रोथ भी रुक जाएगी।''

''फिर भी, मैं कहूँगा तो नहीं।'' उन्होंने कहा।

मैंने महसूस किया कि एक बहुत ही आरक्षित संकोच उनकी आवाज़ में आ गया है। दादा का यह रूप मैंने पहले कभी देखा और परखा न था। मुझे यह भी लगा कि नए लेखकों को वे फूल की तरह छूते हैं। इस एहतियात से कि कहीं फूल की सुरक्षा में लगे कांटों से ही वे आहत न हो जाएं। वे उन्हें चोट नहीं पहुँचाते। दादा का नए लोगों को इस तरह छूना बिलकुल वैसा ही है जैसे बचपन में हम बीर-बहूटियों को छूते थे। हमने यह बहुत बाद में सुना कि बीर-बहूटी में प्रजनन नहीं होता। वे नैसर्गिक हैं। मैं बीर-बहूटियों की वैज्ञानिक सत्यता पर नहीं जाता क्योंकि मुझे कभी-कभी लोक की बातें जीवन के करीब लगती हैं। जीवन के करीब यह तथ्य भी है कि दादा को नये लेखक ऐसे ही लगते होंगे।

मुझे तो दादा नैसर्गिक ही लगते हैं।

इस लेख के आधार पर आज मैं कह सकता हूँ कि अपनी नैसर्गिकता के चलते ही वे विज्ञान साहित्य के भगीरथी स्वामी डॉ. सत्यप्रकाश सरस्वती, मुल्कराज आनंद और चिपको आंदोलन के प्रणेता सुंदरलाल बहुगुणा के अंतरंग हुए। वृक्षों, नदियों और पर्यावरण संरक्षण के लिए उन्हें महत्वपूर्ण लेखन किया।

अपनी मौलिकता के चलते शुकदेव प्रसाद अद्वितीय विज्ञान लेखक और संपादक हुए। उनकी मौलिक कृतियों में जैव प्रौद्योगिकी के विविध आयाम, एड्स : तथ्य एवं भ्रांतियाँ, भारत एवं शेष नाभिकीय विश्व, परमाणुओं की छाया में, वैज्ञानिक निबंधावली, वैज्ञानिक निबंध, यानों की कहानी, तृतीय विश्व एवं भारत की विकासात्मक समस्याएँ, विज्ञान हमारे जीवन में, परिवहन की कहानी, रसायन हमारे जीवन में, नेहरू और विज्ञान, विश्व प्रसिद्ध प्रेरक प्रसंग, विश्व प्रसिद्ध अलौकिक रहस्य, हमारे आसपास विज्ञान, प्रकृति विजय का रोमांच, भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ऊर्जा संसधनों की खोज में, विमानन के सौ वर्ष आदि पर्याप्त चर्चित रहीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंतरिक्ष विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, जीव-जन्तु विज्ञान, परिवहन और विविध साहित्य पर पृथक से किताबें लिखीं। उन्होंने डॉ.ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, आइंस्टाइन, चंद्रशेखर वेंकट रामन और कल्पना चावला की जीवनी लिखीं। विज्ञान कथा कोश का दो बार संपादन किया जिसमें पहली बार किताब घर से प्रकाशित चार खंडों में तथा दूसरी बार आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित छह खंडों में। वे नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों पर दस खंडों में एक वृहद कोश तैयार कर रहे थे कि इसी बीच उन्होंने अपने काम को विराम दे दिया। नये विज्ञान लेखकों को चाहिये कि वे उनके अधूरे कामों को पूरा करें। शुरू-शुरू में यह प्रयास एक अमूर्त प्रयास होगा जो धीरे-धीरे मूर्त होता जाएगा। निदा फ़ाज़ली के शब्दों में फिर वही शेर -

जिस्म बनने में उसे देर लगी
एक उजाला-सा हुआ था पहले।

mohansagoriya1974@gmail.com

ओझल हो गया विज्ञान लेखन का ध्रुवतारा

डॉ. मनीष मोहन गोरे

जीवन के हर क्षेत्र में अनेक योगदानकर्ता होते हैं मगर उनमें से कुछ ही होते हैं जो लोगों के दिलो-दिमाग पर असर छोड़ जाते हैं। हिंदी विज्ञान लेखन के क्षेत्र में शुकदेव प्रसाद ऐसी ही शख़्सियत थे। उनका लिखा विज्ञान पढ़ते हुए कई पीढ़ियाँ बड़ी हुई हैं। विज्ञान के विविध विषयों पर विद्यार्थियों और आमजन के लिए लिखना उनके जीवन का एकमात्र ध्येय था। वे पूरी शिद्दत से जीवन के अंतिम पड़ाव पर भी विज्ञान लेखन करते रहे और इसी के बारे में सोचते रहे। सृजन की कोई भी धारा हो, उसमें एकाकार होने की मुख्य चार अवस्थाएँ होती हैं- जिज्ञासा, अभिरूचि, आदत और धुन (या जुनून)। शुकदेव विज्ञान लेखन धारा की चौथी अवस्था 'जुनून' में पहुँच गए थे। अपने 67 वर्ष के जीवन काल में उन्होंने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विविध विषयों पर लगभग 150 किताबें और 5000 से अधिक विज्ञान लेख लिखे। विज्ञान लेखन में उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें प्रतिष्ठित सोवियत लैंड नेहरु पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। 23 मई 2022 को विज्ञान लेखन का यह ध्रुव तारा आसमान में ओझल हो गया। शुकदेव प्रसाद का अवसान हिंदी विज्ञान लेखन के एक युग के समाप्त हो जाने जैसा है। विज्ञान लेखन ही उनकी जीवन रेखा थी इसलिए उन्होंने इसे अपनी जीविका का साधन बना लिया और जीवनपर्यन्त कोई नौकरी नहीं की। शुकदेव आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी रचनाएं हमेशा लाखों-करोड़ों पाठकों के मन-मस्तिष्क को आलौकित करती रहेंगी।

विद्वान और प्रखर भाषा शैली के धनी

शुकदेव प्रसाद का जन्म 24 अक्टूबर 1954 को उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले (अब सिद्धार्थ नगर) में हुआ था। उन्होंने एम. एस-सी. (वनस्पति विज्ञान) के अलावा हिंदी, अर्थशात्र और प्राचीन भारतीय इतिहास में एम.ए. की उच्च्य शिक्षा हासिल की थी। विज्ञान और हिंदी भाषा सहित दूसरे महत्वपूर्ण विषयों में उच्च्य शिक्षा ने उन्हें एक कुशल विज्ञान लेखक बनने में मदद की। उन्होंने विज्ञान में शिक्षा हासिल किया, उसे आत्मसात किया और फिर उनके मन में यह विचार उठा कि विज्ञान अपने गूढ़ स्वरूप के कारण विद्यार्थियों और आमजन को प्रायः विकर्षित करता है। फिर उन्होंने यह संकल्प लिया कि वो सरल-सहज-सुबोध स्वरूप में विज्ञान की बातें लोगों से साझा करेंगे। इसके लिए हिंदी में लोक विज्ञान लेखन उन्हें सर्वोत्तम मार्ग समझ में आया। तब उन्होंने अपने युवावस्था से विज्ञान के विविध विषयों पर हिंदी भाषा में विज्ञान लेखन शुरू किया। उनकी भाषा बेहद स्पष्ट, प्रखर और विचारोत्तेजक थी इसलिए विज्ञान लेखन जगत में उन्होंने बहुत जल्दी अपनी एक प्रमुख जगह बना ली। युवा विद्यार्थियों और आमजन के बीच वे एक सेलेब्रिटी के समान लोकप्रिय हो गए। चारों ओर उनकी चर्चा होने लगी। हिंदी में विज्ञान लेखन को एक ऊँचाई देने में शुकदेव प्रसाद ने अद्वितीय भूमिका निभाई।

वैज्ञानिक गतिविधियों पर पैनी नज़र

शुकदेव प्रसाद देश-दुनिया में चल रही वैज्ञानिक गतिविधियों पर नज़र रखते थे और उनके बारे में विज्ञान लेख और पुस्तकों का सृजन किया करते थे। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जैव प्रौद्योगिकी, पर्यावरण संरक्षण के वैश्विक प्रयास, क्लोनिंग, डीएनए फिंगर प्रिंटिंग

आदि जैसे वैज्ञानिक क्षेत्रों में अनुसंधान चल रहे थे। इधर शुकदेव प्रसाद की कलम इन वैज्ञानिक अनुसंधानों, उनसे जुड़े व्यावहारिक उपयोगों और मानव जीवन पर उनके प्रभावों पर चल रही थी। इस लेखन ने विद्यार्थियों सहित आम पाठकों को रोमांचित, प्रभावित और प्रेरित किया।

शुकदेव प्रसाद ने विज्ञान कथाओं के सृजन और प्रोत्साहन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विश्वरंग के अंतर्गत आइसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल द्वारा छः खंडों में प्रकाशित 'विज्ञान कथा कोश' का संपादन शुकदेव जी ने किया था। आईसेक्ट परिवार की ओर से सी.वी.रमन विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे द्वारा करीब दो माह पूर्व रवींद्र भवन, भोपाल में आयोजित वनमाली राष्ट्रीय कथा सम्मान 2021-22 समारोह में शुकदेव प्रसाद को विशेष रूप से सम्मानित किया गया। यह शुकदेव प्रसाद का अंतिम सार्वजनिक और गरिमापूर्ण सम्मान था।

तीक्ष्ण स्मृति और तार्किक दृष्टिकोण

शुकदेव प्रसाद की एक महत्वपूर्ण खासियत यह थी कि उनकी स्मृति बेहद तीक्ष्ण थी। उनके व्याख्यानों में वो मूल विषय से जुड़े मुद्दों के इतने सूत्र विभिन्न प्रामाणिक स्रोतों से जोड़कर बताते कि श्रोतागण चकित रह जाते। परस्पर संवाद के दौरान भी यही बात उभरकर सामने आती थी। मेरी उनसे कई अवसरों पर प्रत्यक्ष और दूरभाष पर बात होती रहती थी। उन वार्ताओं के दौरान भी मैंने हमेशा यही बात पाई कि उनकी स्मृति अत्यंत प्रखर थी और वे बरसों पुरानी मुलाकात में हुई हर एक बात को अक्षरशः बता जाते थे। अद्भुत स्मृति के अतिरिक्त शुकदेव एक तार्किक दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति थे। उनकी विश्लेषण क्षमता अति समृद्ध थी। आईसेक्ट द्वारा प्रकाशित उनके लेख और संपादकियों में अनेक पृष्ठों में वर्णित उनके पाठ पाठकों को बहुविध विचारने को विवश करते हैं। मैं समझता हूँ कि एक उम्दा लेखक वही होता है जो पाठकों को विचारों का एक सुदीर्घ कैनवास देता है और इस मामले में शुकदेव सर्वथा सफल रहे।

जिस व्यक्ति में बाल जिज्ञासा उपलब्ध हो उसमें आजीवन ऊर्जा का संचार होता रहता है। यह ऊर्जा उसे उसके क्षेत्र विशेष में निरंतर योगदान के लिए प्रेरित करती है। शुकदेव में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न विषय क्षेत्रों को लेकर एक सहज जिज्ञासा उनके विज्ञान लेखन के आरंभिक समय से लेकर उनके जीवन के अंतिम पड़ाव तक बनी रही। उनकी इस जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण उनके लेखन में हमेशा नवीनता बनी रही। सोशल मीडिया का युग आया लेकिन शुकदेव प्रसाद के विज्ञान लेख और उनकी पुस्तकों की उमंग पाठकों में मंद नहीं हुई। यह बड़ी बात है।

पीढ़ियों को करते रहेंगे प्रेरित

शुकदेव प्रसाद आजीवन विद्यार्थी भाव में रहे। शायद उनका यह विद्यार्थी भाव ही उनकी कलम की स्याही थी। उनके लेखन का विस्तार हिन्दी भाषी जनमानस की सीमा से बाहर भी पसरा हुआ था। 67 वर्ष की अपनी जीवन अवधि में से लगभग 45 वर्ष तक उन्होंने सक्रिय लेखन किया। कई पीढ़ियाँ उनके लिखे विज्ञान से ज्ञानार्जन करती रहीं। जो पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थियों को विज्ञान की गूढ़ संकल्पनाएं न समझा सकीं, उन्हें शुकदेव के रोचक विज्ञान लेख समझा जाते थे। उनके निधन के बाद उनकी कलम तो रुक गई है मगर उन्होंने जो लिखा है, वो आने वाली पीढ़ियों को विज्ञान की सरस जानकारी देता रहेगा और विज्ञान शिक्षा व अनुसंधान के लिए उन्हें प्रेरित करता रहेगा।

mmg@niscpr.res.in

वनस्पति विज्ञान में पी-एच. डी. और पत्रकारिता एवं जनसंचार में शैक्षिक योग्यता रखने वाले डॉ. मनीष मोहन गोरे विगत 27 वर्षों से विज्ञान लेखन और विज्ञान संचार में सक्रिय हैं। प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया में उन्होंने इन तमाम वर्षों में विज्ञान लेखन किया है। जन्तुव्यवहार, जैवविविधता, विज्ञानकथा और विज्ञान संचार पर इनकी 8 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। डीएसटीके स्वायत्त संस्थान विज्ञान प्रसार में 12 वर्षों की सेवा के बाद वर्तमान में वह सीएसआईआर के संस्थान राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं नीति अनुसंधान संस्थान(पूर्ववर्ती नाम सीएसआईआर-निस्केयर) में वैज्ञानिक और लोकप्रिय विज्ञान पत्रिका विज्ञान प्रगति के संपादक हैं।

पतली काया, छोटा कद, बुलंद इरादे

प्रेमचंद्र श्रीवास्तव

शुकदेव प्रसाद जी से मेरा सर्वप्रथम परिचय मेरे तत्कालीन निवास (स्टाफ क्वार्टर्स, सीएमपी डिग्री कॉलेज, प्रयागराज) पर तब हुआ था जब वे इन्टर पास करके इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने के लिए अपने पिता के संग आए थे। स्नातक स्तर की शिक्षा के लिए उन्होंने अपना गाँव छोड़ कर प्रयाग की धरती को चुना था। आरंभ में प्रवेश में कुछ कठिनाइयाँ थीं क्योंकि बहुत अच्छे अंकों के बावजूद भी इ.वि.वि. के स्तर के कारण उनका नाम प्रतीक्षा सूची में था। परन्तु बाद में उनको प्रवेश मिल गया।

शुकदेव जी का मूल स्थान जिला सिद्धार्थ नगर (तत्कालीन बस्ती) की बाँसी तहसील का कोई ग्राम था। चूँकि मेरा भी मूल स्थान बाँसी ही है अतः उसी संबंध के नाते उनके पिता उन्हें लेकर मेरे यहाँ मिलने आए थे। उनसे मेरा किसी प्रकार का कोई पूर्व परिचय नहीं था। हाई स्कूल और इंटरमीडिएट की परीक्षाएँ उन्होंने बाँसी के ही रत्नसेन इंटर कॉलेज से उत्तीर्ण की थीं और वहाँ वे एक कुशाग्र और मेधावी छात्र के रूप में जाने जाते थे। उन्होंने दोनों परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थीं और दोनों ही बार मेरिट स्कॉलरशिप हासिल की थी। मेरे चाचा जी श्री कृपाशंकर श्रीवास्तव भी रत्नसेन इंटर कॉलेज में लैक्चरर थे और उन्हीं के संपर्क सूत्र से प्रथम बार मेरी शुकदेव जी से मुलाकात हुई।

उस समय शुकदेव जी अपनी किशोरावस्था में थे। गौर वर्ण, दुबली पतली काया, छोटा कद (पर बेहद बुलंद इरादे) और जिज्ञासु व्यक्तित्व। उस अल्प वयस में भी शुकदेव जी मिलने वाले पर अपनी एक छाप छोड़ते थे।

उस प्रथम परिचय के बाद शुकदेव जी अक्सर मेरे घर आने लगे। मेरे घर का छोटा-मोटा पुस्तकालय भी शायद उनके लिए आकर्षण का कारण था। उनके अंदर भी कहीं न कहीं लेखन का कीड़ा कुलबुला रहा था। इलाहाबाद प्रवास के उन प्रारंभिक दिनों में ही उनको विश्वविद्यालय प्रांगण में स्थित विज्ञान परिषद् प्रयाग से जुड़ने का भी अवसर मिल गया। परिषद् से इस जुड़ाव का प्रतिफल यह हुआ कि शुकदेव जी को डॉ. शिवगोपाल मिश्र जी का स्नेह, आशीर्वाद और मार्गनिर्देश सभी भरपूर मात्रा में मिला। यह एक प्रकार से उनके जीवन की दिशा निर्धारित करने वाली घटना थी क्योंकि लेखन की जो इच्छा उनके अंदर भी उसको परिषद् में पंख मिल गए। शुकदेव जी अपनी स्नातक शिक्षा के साथ-साथ परिषद् का भी कुछ न कुछ कार्य करने लगे। अब जब वे मेरे घर आते तो मुझसे भी

विज्ञान परिषद् की चर्चा करते और वहाँ क्या-क्या कार्य होते हैं, इसके विषय में विस्तार पूर्वक बताते। वे उसी समय परिषद् की पुस्तकों, पत्रिकाओं की देखभाल और रख-रखाव के उत्तरदायित्व के साथ 'विज्ञान' पत्रिका के कार्यों में भी सहायता करने लगे थे। मैं तब तक 'विज्ञान' पत्रिका और विज्ञान परिषद् से नहीं जुड़ा था। ये सत्तर के दशक के मध्य का समय था। 'विज्ञान' में तो नहीं पर 'विज्ञान लोक' और 'विज्ञान-जगत' जैसी हिन्दी की वैज्ञानिक पत्रिकाओं में मेरे कुछ लेख तब तक छप चुके थे। पठन-पाठन और लेखन में मेरी कुछ रुचि का जो भी आभास शुकदेव जी को रहा हो, उसकी चर्चा उनहोंने डॉ.शिवगोपाल जी से की होगी। परिणाम स्वरूप डॉ. मिश्र जी ने शुकदेव जी से कहा कि फिर तो आप प्रेमचंद्र जी को परिषद् अवश्य ले आइए। इस प्रकार डॉ.मिश्र के इस स्नेहपूर्ण आदेश पर मैं पहली बार परिषद् पहुँचा और सेतु बने श्री शुकदेव जी। मैं उस दिन जो परिषद् से जुड़ा तो आज तक जुड़ा हुआ हूँ।

शुकदेव जी के विज्ञान परिषद् से जुड़ने पर उनकी कार्यक्षमता और परिषद् के प्रति उनकी प्रतिबद्धता देखकर उनहें 'विज्ञान' पत्रिका में संपादन सहायक का पद भी प्रदान किया गया था। वे उस समय नियमित यप से 'विज्ञान' में लेख लिख रहे थे। डॉ. मिश्र के सुझाव पर उन्होंने प्रारंभ से लेकर सत्तर के दशक तक के विज्ञान के अंकों को प्रति वर्ष की सुदृढ़ जिल्दों में सुरक्षित करने के कार्य में बहुत परिश्रम किया। प्रति वर्ष की प्रतियों की चौदह से अट्ठारह तक जिल्दें तैयार हुई। यह अपने आप में बड़ा श्रमसाध्य और समय खाने वाला कार्य था। इधर परिषद् में अधिक ध्यान देने के कारण वे अपने विषय की पढ़ाई पर कम ध्यान दे पा रहे थे। परन्तु उनहोंने स्नातक के पश्चात वनस्पति विज्ञान से एम.एससी. और आगे चल कर अर्थशास्त्र, हिन्दी साहित्य और प्राचीन इतिहास से एम.ए. की परीक्षाएं भी उत्तीर्ण की और अपनी लेखकीय क्षमता को पुष्ट किया।

इस दौरान मेरा उनसे संपर्क नियमित रूप से बना रहा। शुकदेव जी ने कभी नौकरी के लिए विशेष प्रयत्न नहीं किया। लेखन ही उनका जीवन बन चुका था और वे इसी की दुनिया में रह कर जीवन व्यतीत करने की ठान चुके थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के रीडर डॉ. देवेश चन्द्र पाण्डेय के सुझााव और सहायता से शुकदेव जी ने सर्वप्रथम एक पत्रिका निकाली 'विज्ञान भारती' जिसके प्रकाशक थे पाण्डेय जी और संपादक थे स्वयं शुकदेव प्रसाद। उनका यह प्रथम प्रयास ही लोगों को काफी प्रभावित कर गया। पत्रिका के लिए वे अपने संपर्को से बहुत से अच्छे अच्छे लेख प्राप्त कर लिया करते थे। मुझसे और मेरी पत्नी से भी वे नियमित रूप से लेख ले जाया करते थे। उन्होंने इस पत्रिका के कई बहुत सुन्दर अंक निकाले और पत्रिका प्रशंसित भी खूब हुई। पर विज्ञापन और विक्रय की समुचित व्यवस्था के अभाव में पत्रिका ने आर्थिक बोझ के तले दम तोड़ दिया। इसके बाद शुकदेव जी ने स्वयं अपने दम पर एक 'विज्ञान वैचारिकी अकादमी' की स्थापना करके उसके अन्तर्गत 'विज्ञान वैचारिकी' और 'पर्यावरण दर्शन' नामक दो पत्रिकाएँ निकालीं। उनका पत्रिकाओं के प्रकाशन-संपादन का सफर ऐसे ही चलता रहा। वे नफा-नुकसान की परवाह किए बिना लेखन के संसार में डूब चुके थे। पत्रिकाओं के संपादन के समानान्तर उनका अन्य पत्र-पत्रिकाओं में लेखन और छोटी-बड़ी पुस्तकों की रचना का कार्य

प्रेमचंद्र श्रीवास्तव वरिष्ठ विज्ञान लेखक हैं। वे पिछले चार दशकों से विज्ञान लेखन कर रहें हैं। विज्ञान लेखन के लोकप्रियकरण में प्रेमचंद्र श्रीवास्तव की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आपने प्राध्यापक के रूप में अपनी आजीविका का निर्वहन करते हुए विज्ञान की लगभग सभी पत्रिकाओं में नियमित लेखन किया। विज्ञान परिषद प्रयाग सहित अन्य विज्ञान संस्थाओं से आपका गहरा नाता रहा, जिसके चलते आपने इन संस्थान के उत्थान के लिए कार्य किया। हिन्दी विज्ञान लेखन जगत में आपकी महती उपस्थिति है।

भी निरन्तर चल रहा था। उसी समय उन्होंने प्रतियोगी छात्रों के लिए 'प्रतियोगिता सम्राट' नामक एक पत्रिका का भी संपादन किया। अपनी अच्छी सामग्री के कारण ये पत्रिका भी छात्रों में बहुत लोकप्रिय हुई। पर अधिक दिनों तक वे इसके भी साथ नहीं रहे। अब वे अन्य पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तक लेखन के कार्य में ही अपनी पूरी ऊर्जा लगा रहे थे। स्वतंत्र लेखन ही अब उनका जीवन भी था और जीविका भी।

अब हम लोगों की पहले जैसी अक्सर मुलाकातें भी कम होने लगी थीं। कारण यह था कि मैं अब कॉलेज से बचा हुआ अपना अधिकतम समय परिषद् में देने लगा था। परिषद् के कार्यों में भी मेरी व्यस्तता बहुत बढ़ गई थीं। शुकदेव जी भी पूर्णकालिक लेखन वाली जीवन पद्धति के कारण अपने घर से कम ही निकल पाते थे। मेरे पास 'विज्ञान' पत्रिका का संपादन और संयुक्त मंत्री पद का कार्यभार था और शुकदेव जी की तो आजीविका ही लेखनी थी। पर शुकदेव जी अपनी नई पुस्तकें अक्सर उपलब्ध कराते थे या उसकी सूचना देते रहते थे। उनके प्रकाशित लेखों और पुस्तकों से उनकी लेखकीय प्रगति की सूचना मुझे मिलती रहती थी। एक प्रकार से उनके विद्यार्थी जीवन से लेकर उनके लेखन के शीर्ष पर पहुँचने और एक अत्यंत सम्मानित, सक्षम और वरिष्ठ लेखक के रूप में स्थापित होने तक की यात्रा का मैं साक्षी रहा हूँ।

शुकदेव जी स्वभाव से कुछ अक्खड़ किस्म के व्यक्ति थे। अतः जहाँ उनके अनेक प्रशंसक थे वहीं विरोधी भी थे। स्पष्टवादी तो वे थे पर उसमें उग्रता भी थी। यश और धन दोनों उन्होंने स्वतंत्र लेखन से ही कमाया। उनके पुरस्कार और सम्मानों से वे अपने जीवनकाल में अलंकृत किए गए। कुछ समय पूर्व विज्ञान परिषद् ने भी उन्हें सम्मानित किया था। प्रतिष्ठित सोवियत लैंड-नेहरू अवार्ड तो उन्होंने अपनी अपेक्षाकृत युवावस्था में ही प्राप्त कर लिया था। इस कड़ी में आत्माराम पुरस्कार विशेष उल्लेखनीय है। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने कुछ दिनों तक सीपीएमटी के विद्यार्थियों को पढ़ाया भी था। यह उनका नया रूप था। व्याख्यानों के लिए आमंत्रित किए जाने के अतिरिक्त रेडियो और टेलीविजन से भी उनकी वार्तायें प्रसारित हुई थीं।

शुकदेव जी ने अपने जीवन में बड़ी विपुल मात्रा में लेखन किया। उनके करीब पाँच हजार लेख और डेढ़ सौ पुस्तकें प्रकाशित हैं। मैं जब भी दो-चार बार उनके घर गया हूँ उन्हें पुस्तकों के बीच जमीन पर बैठ कर लिखते पाया है। उनकी वही छवि मेरे मन में अंकित है। यही उनका असली परिचय था।

पिछले दो एक वर्षों से जब भी उनका फोन आता तो वे अपनी अस्वस्थता की चर्चा करते। गिरते स्वास्थ्य से लेखन में भी कमी आ गई थी और वे धनाभाव से भी ग्रस्त हो रहे थे। पिछली 23 मई 2022 को हृदयघात से उनके निधन ने हिन्दी विज्ञान लेखन जगत में एक बड़ा शून्य उत्पन्न कर दिया। 24 अक्टूबर 1954 को जन्में शुकदेव जी ने 68 वर्ष की आयु में संसार से विदा ले ली। उनका जाना समूचे लेखन जगत की और मेरी व्यक्तिगत अपूरणीय क्षति है।

आज उनका नश्वर शरीर नहीं है पर वे अपने लेखों और पुस्तकों में सदैव जीवित रहेंगे। आने वाली पीढ़ियाँ उनके लेखन से प्रेरणा लेती रहेंगी। उन्होंने शून्य से प्रारंभ करके अपना लेखकीय कद इतना बड़ा बनाया, यह उनकी दुर्लभ उपलब्धि थी। हिन्दी विज्ञान लेखन में उनकी कीर्ति सदैव अमर रहेगी।

amitabh.premchandra@gmail.com

शुकदेव जी को जानने वाले प्रायः सभी लोग उनके हरफनमौला अंदाज से वाकिफ हैं। विज्ञान लेखन और विज्ञान लेखकों तथा इनसे जुड़े तमाम घटनाक्रमों पर शुकदेव जी की खरी-खरी मीमांसा, कभी गुदगुदाने वाली तो कभी तीर-कमान वाली उनकी टिप्पणियाँ जग जाहिर हैं। उन्हें तहेदिल से जानने वाले लोग प्रायः इसका लुत्फ लेते हैं और शुकदेव जी के अनवरत विज्ञान लेखन का सम्मान करते हैं, जोकि इससे बहुत ऊँचा है। मेरी तरह अन्य अनेक सहधर्मी भी शुकदेव जी की इस 'विशेषता' को जानते हैं और मौका पाते ही उनके वाक स्वातंत्र्य से कृतार्थ होते रहते हैं। स्वामानधन्य श्री शुकदेव जी लेखन और सम्पादन प्रतिभा के धनी तो हैं ही, बल्कि उनके अभिभाषण और लगातार बोलते रहने की अनोखी क्षमता उनके व्यक्तित्व को निश्छल और आकर्षक बनाती है। हालांकि शुकदेव प्रसाद को भी विरोधों का सामना करना पड़ा पर उन्होंने इसका करारा जवाब अपने विज्ञान लेखन से दिया और आगे बढ़ते रहे।

शुकदेव जी की अनेकानेक विशेषताओं में प्रमुख हैं- उनकी अनवरत, अथक विज्ञान लेखन की लगन जो उन्हें 'शुकदेव प्रसाद' बनाती है। उनका शताधिक पुस्तक रचना संसार उन्हें इस विधा में अद्वितीय बनाता है। अगर शुकदेव वह न करते जो उन्होंने किया तो कुछ और करते जो उन्होंने नहीं किया, तो भी कुछ अनोखा ही करते, जैसे उन्होंने भारी तादाद में विश्वकोशीय विज्ञान लेखन की रचना की।

डॉ.मनोज पटैरिया

विज्ञान लेखन को समर्पित जीवन

रामधनी द्विवेदी

जब मैं 1977 की दिसम्बर में इलाहाबाद आया तो जिन लोगों से पहली मित्रता हुई उनमें शुकदेव प्रसाद जी प्रमुख थे। मित्रता का कारण भी विज्ञान लेखन ही था। मैं 'अमृत प्रभात' में नियमित विज्ञान का कॉलम लिखता था। मेरा नाम उनके लिए अपरिचित था। एक दिन वह दफ्तर में आए और मेरा नाम पूछते हुए संपादकीय में मुझसे मिले। मेरे कॉलम की तारीफ की और बोले चलिए इलाहाबाद के और विज्ञान लेखकों से आपका परिचय करायें। वह मुझे लेकर विज्ञान परिषद गए और वहाँ डॉ. शिवगोपाल मिश्र और श्री प्रेमचंद श्रीवास्तव से मेरा परिचय कराया। डॉ. मिश्र हिंदी के मूर्धन्य विज्ञान लेखक हैं जो उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र के प्रोफेसर थे और विज्ञान परिषद से 'विज्ञान' नामक देश की पहली विज्ञान पत्रिका का संपादन प्रकाशन कर रहे थे। प्रेमचंद जी सीएमपी डिग्री कॉलेज में वनस्पति शास्त्र के प्रवक्ता थे। डॉ. मिश्र नए लेखकों की पौध तैयार कर रहे थे। वहीं अरविंद मिश्र से भी परिचय हुआ जो उस समय प्राणिशास्त्र विभाग में शोध कर रहे थे। विज्ञान संकाय के कई शिक्षकों से वहीं परिचय हुआ। डॉ. सत्यप्रकाश जी उस समय तक संभवतः शिक्षण कर रहे थे जिन्होंने बाद में संन्यास लेकर स्वामी सत्यप्रकाश हुए।

यह विज्ञान भवन शाम का इलाहाबाद के विज्ञान लेखकों का अड्डा बन गया। शाम लगभग चार से पाँच के बीच शुकदेव प्रसाद नियमित यहाँ आते। मैं भी दिन की शिफ्ट के बाद यहाँ आता। चायपान होता, डॉ. मिश्र की मृदु हँसी के बीच विज्ञान लेखन की किसी न किसी समस्या पर चर्चा होती या नई प्रकाशन योजनाओं पर विचार विमर्श होता। शुकदेव प्रसाद वनस्पति शास्त्र में एमएससी थे लेकिन हर विषय पर उनकी लेखनी निर्बाध चलती। बाद में तो कम्प्यूटर और अंतरिक्ष विज्ञान पर लेखन के वे विशेषज्ञ हो गए। इन विषयों पर उनकी कई किताबें बाद में छपीं। विज्ञान लेखन में क्षेत्र में जहां तक मेरी जानकारी है, शुकदेव प्रसाद को डॉ. मिश्र ही ले आए लेकिन बाद में न जाने किस विषय पर दोनों में मतभेद हो गए और शुकदेव उनकी आलोचना करने लगे। कभी-कभी विज्ञान परिषद के कार्यालय में ही उनमें नोंक झोंक हो जाती लेकिन डॉ. मिश्र के प्रति उनके सम्मान में कभी कमी नहीं आई। संबंध बाद तक बने रहे।

शुकदेव जी उन दिनों 34 एलनगंज के मकान के एक कमरे में रहते थे। वह 10 बाई 12 का कमरा ही उनका कार्यालय और आवास दोनो था। पहले उसमें एक सोफा हुआ करता था और एक तख्त। लेकिन जब किताबों की संख्या बढ़ने लगी तो तख्त हटा दिया गया और उसकी जगह किताबों ने ले ली। बाद में सोफे पर भी किताबों का कब्जा हो गया। बुकसेल्फ बने और उसमें किताबें रखीं गईं, जो छत तक पहुँच जाती थीं लेकिन वे भी कम पड़ गईं तो किताबें जमीन पर फैलने लगीं और उन्हीं को किनारे कर शुकदेव जी का बिस्तर बन जाता। हम लोग जाते तो कुछ किताबें हटा कर उसी बिस्तर पर जगह बनाई जाती। प्रायः कोई न कोई उनके कमरे में जमा ही रहता। वहीं किसी को भेज कर चाय मंगाई जाती और गप्पें लड़ती। इसी बीच वह कुछ लिखते भी रहते। मैंने उनको एक सिटिंग में छोटी-मोटी किताब लिखते देखा है। उनके लिए आया खाना ढंका रह जाता और दोपहर से शाम हो जाती। वह खाना नहीं खाते, व्हिस्की की एक ड्रिंक बनाते, उससे सिप लेते रहते और लिखते रहते। जब कोई किताब तत्काल प्रकाशक को देनी होती तो वह लिखते समय सब कुछ भूल जाते। वैसे दिन के लेखन के साथ वह रात में भी लिखते, उसी कमरे में। सुबह तक लिखना जारी रहता और लगभग सुबह सोते और दोपहर तक जगते। मैंने तो कई बार दोपहर में जा कर उन्हें जगाया है। बताते कि चार बजे तक लिखते रहे और उसके बाद सोये थे।

शुकदेव जी ने विज्ञान लेखन को बहुत कुछ दिया। वह सोवियत लैड पुरस्कार पाने वाले सबसे युवा लेखक रहे हैं। कितने पुरस्कार उन्हें मिले, इसका हिसाब तो उन्हें भी नहीं था। पुरस्कारों के मेडल और चित्र उसी कमरे की दीवार पर सजे रहते। लगभग हर साल उन्हें कोई न कोई पुरस्कार मिलता रहता। लेकिन निजी जीवन उनका बहुत बिखरा था। शादी की नहीं, छोटे भाई को पढ़ाया और

रामधनी द्विवेदी वरिष्ठ विज्ञान लेखक तथा लोकप्रिय पत्रकार-संपादक हैं। उन्होंने लगभग पचास वर्षों तक जनवार्ता, आज, अमृत प्रभात, अमर उजाला और दैनिक जागरण में सेवाएँ दी। वे पिछले डेढ़ दशक से निरंतर विज्ञान लेखन कर रहे हैं। आपका ज्योतिष और होम्योपैथी में गहन अध्ययन है। संस्मरण और मुक्त लेखन के लिए रामधनी द्विवेदी जी का नाम लेखन जगत में एक चमकीला नाम है।

वह शिक्षक बना। वह चाहते तो खुद कहीं शिक्षक बन जाते। लेकिन इसके लिए प्रयास नहीं किया। बाद में उन्होंने इतिहास और हिंदी से भी एमए किया। वह पूरी तरह विज्ञान लेखन को ही समर्पित थे। उन्होंने विज्ञान एकादमी की स्थापना की। पहले इसका नाम विज्ञान संस्थान था। एक बार मेरे मामाजी डॉ. जी.एन. पांडेय जो लखनऊ एनआइटी के निदेशक थे, यूपीएससी के इंटरव्यू में विशेषज्ञ के रूप में आए थे। मुझे सूचना मिली तो मैं उनसे मिला। शुकदेव जी को जानकारी हुई तो वह भी मेरे साथ मिलने गए तो मामा जी ने नाम बदलने का सुझाव दिया और कहा 'संस्थान' में पुरानापन लगता है इसका नाम एकडेमी जैसा रखें जिसके बाद उसे विज्ञान एकडेमी रखा गया। विज्ञान वैचारिकी नाम से त्रैमासिक पत्रिका भी निकाली जिसमें कई नवोदित लेखकों को स्थान मिला।

वह प्रतियोगिता सम्राट नामक मैगजीन के भी संपादक रहे जो दिल्ली से छपती थी। वहीं से क्रिकेट सम्राट या खेल सम्राट नाम पत्रिका भी निकलती थी। वह प्रतियोगिता सम्राट की कुल सामग्री इलाहाबाद में ही तैयार कराते, उसे कोरियर से दिल्ली भिजवाते और दस दिन के लिए वहां जा कर पूरी मैगजीन तैयार करा देते। एक बार तो वह मैगजीन प्रतियोगी छात्रों में छा गई। मैं भी उसमें समसामयिक विषयों पर लिखता। हम चार पाँच लोगों की टीम थी जो पूरी मैगजीन का मैटर तैयार कर देती। उन दिनों अमृत प्रभात में बंदी चल रही थी और शुकदेव जी की पत्रिका ने हमारी बहुत मदद की।

शुकदेव जी बहुत महत्वाकांक्षी थे। यह बुरा भी नहीं है। वह विज्ञान एकेडमी का विस्तार करना चाहते थे। बाद में उन्होंने किसी तरह पास के छोटा बघाड़ा नामक जगह में थोड़ी जमीन खरीदी और मकान बनाया जिसमें वह प्रतियोगी छात्रों को सामान्य ज्ञान की कक्षाएँ लेते। वह चाहते थे कि मैं भी उनके साथ आ जाऊँ, लेकिन मेरा परिवार था और मैं उनकी तरह आकाशवृत्ति के लिए तैयार नहीं था।

इलाहाबाद में राष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठियाँ कराईं जिनमें विज्ञान लेखकों का जमावड़ा भी होता। वह अपने स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह रहते। दिन भर चाय और सिगरेट पर ही कट जाती। एलनगंज के तिराहे पर पीपल के पेड़ के नीचे की चाय की दूकान उनका अड्डा थी। जहाँ दोपहर और शाम को अक्सर मिलते और वहाँ से गुजरने वाले अपने मित्रों को बुला बुला कर चाय पिलाते। भोजन शाम को ही करते। उनके पड़ोस की महिला उनके भोजन आदि का ख्याल रखती लेकिन जैसा मैने कहा है संभवतः अधिक चाय पीने से उनको भूख भी नहीं लगती। वह जब भी मेरे घर आते मैं आफिस की तैयारी करता या खाना आदि खाता होता आफिस जाने के लिए। उनके लिए कोई कटोरी या मिट्टी का एक दिया दे दिया जाता एशट्रे के रूप में। वह सिगरेट चाय पीते और बात करते रहते। किसी न किसी तरह की नई योजना हमेशा उनके दिमाग में रहा करती थी। वह हमेशा मुझसे कहा करते थे कि अपने लेखों का विषयानुसार संकलन कर पुस्तक का रूप दे दीजिए। मैं छपवा दूँगा, लेकिन मैं लापरवाह ही बना रहा और मेरे लगभग हजार लेखों की कटिंग रखे-रखे गल गई।

मैंने 1999 में इलाहाबाद छोड़ दिया, बरेली आ गया। 2002 में बेटे की नौकरी केंद्रीय सरकार में लगने के बाद हम लोग दिल्ली शिफ्ट हो गए। तब से उनसे बस फोन से ही संपर्क रह गया। 2006 में बेटे की शादी में वह आए और वही मेरी उनसे आखिरी मुलाकात थी। फोन से ही बातचीत होती रहती। वह दैनिक जागरण में बीच-बीच में लिखते रहते। इन दिनों उनका स्वास्थ्य भी खराब था। मोतियाबिंद का ऑपरेशन कराने के बाद वह कुछ सुधर रहे थे। लेकिन एक दिन अचानक उनके न रहने की सूचना मिली। शायद उन्हें लू लग गई थी। अपने प्रति लापरवाही के कारण कोई चिकित्सा नहीं कराई। अपने शुभेच्छुओं से बोले, 'अरे लू में कोई अस्पताल जाता है।' और वह खुद चले गए। शुकदेव जी का इस तरह जाना मेरी निजी क्षति है, हिंदी में लोकप्रिय विज्ञान लेखन उनके न रहने से सूना तो हुआ ही है।

rddwivedi.astrologer@gmail.com

कम अवधि की कठिन तपस्या

आर.के. अंथवाल

शुकदेव जी से मेरा प्रथम परिचय सन् 1982 में उनकी पुस्तक 'प्रदूषण तेरे रूप अनेक' के माध्यम से हुआ था। मैं 'आविष्कार' के संपादकीय विभाग में नया-नया आया था। वहीं मुझे यह पुस्तक मिली थी। दिखने में बहुत ही साधारण, लेकिन विषय-वस्तु के हिसाब से उत्तम। उस समय पर्यावरण विज्ञान विषय पर बहुत ज्यादा संख्या में पुस्तकें देखने को नहीं मिलती थीं। इस बात को ध्यान में रखते हुए उनकी यह पुस्तक और 'हमारा बदलता पर्यावरण' शीर्षक से एक अन्य पुस्तक काफी सामयिक थी और उस दौर में पर्यावरण विषयक पुस्तकों की कमी को पूरा करती थीं। उस समय विद्यार्थियों को होमवर्क के रूप में पर्यावरण विषय पर सामग्री जुटाने और विद्यालय में वाद-विवाद, आदि प्रतियोगिताओं में इस विषय पर बोलने का नया-नया प्रचलन था। अड़ोस-पड़ोस के जो बच्चे पर्यावरण पर कुछ सामग्री के लिए मेरे पास आते थे तो मैं उन्हें प्रदूषण तेरे रूप अनेक पुस्तक दे देता था। मैंने देखा कि जिस बच्चे को मैंने पुस्तक पकड़ाई उसकी पर्यावरण विषय पर अच्छी पकड़ हो गई। यदि कोई पुस्तक, लेख, कोई रचना ऐसा कुछ कर पाती है तो यह उसके रचनाकार के लिए बहुत बड़ी सफलता है।

शुकदेव जी से मेरा साक्षात्कार सन् 2000 में मार्च माह में हुआ। सुभाष लखेड़ा जी, डॉ. सुबोध महंती और अन्य कुछ विज्ञान लेखक मित्र साथ में थे। हम लोग विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा आयोजित एक संगोष्ठी में भाग लेने के लिए दिल्ली से प्रयागराज गए हुए थे। कार्यक्रम के उद्घाटन सत्र के पश्चात हम लोग जलपान हेतु सभागार से बाहर आए हुए थे। वहाँ लखेड़ा जी से एक व्यक्ति बड़ी अंतरंगता से बातचीत कर रहे थे। लखेड़ा जी ने उस व्यक्ति से मेरा परिचय कराते हुए कहा, 'ये शुकदेव जी हैं'। शुकदेव जी ने मुझसे

बड़ी आत्मीयता से हाथ मिलाया तथा 'आविष्कार' पत्रिका की प्रगति को लेकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि वह जल्दी ही 'आविष्कार' में प्रकाशन के लिए एक विज्ञान कथा भेजेंगे। वे अपनी बात कहे जा रहे थे और मैं उन्हें गौर से सुनते हुए इस बात को लेकर विस्मित था कि जिस व्यक्ति से 1982 में मेरा परिचय 'प्रदूषण तेरे रूप अनेक' पुस्तक के जरिए हुआ था, यह उसका कौन सा रूप है। मैं तो तब उन्हें काफी उम्रदार व्यक्ति मानता था और इतने वर्षों बाद तो वह व्यक्ति और भी वृद्ध हो जाना चाहिए। पर शुकदेव नाम का यह व्यक्ति तो जवान है। दरअसल मेरे मस्तिष्क में उम्र को लेकर उनकी यह छवि उनके लेखों के कारण बनी थी। मैंने 1982 से लेकर उनकी जो भी रचनाएँ पढ़ीं वे मुझे सालों-साल के गहन अध्ययन, मनन, चिंतन और विवेचन की लंबी तपस्या की प्रक्रिया से गुजरे किसी रचनाकार की लगती थीं। बस यही आश्चर्य हो रहा था इस तपस्या की लंबी अवधि को इस लेखक ने कैसे इतनी कम अवधि, बहुत ही कम अवधि में, पूरा किया और देश के श्रेष्ठतम विज्ञान लेखकों की श्रेणी में अपना प्रमोचन किया। मेरा सौभाग्य था कि वह व्यक्ति मुझे प्रोत्साहित करते हुए स्वयं ही 'आविष्कार' के लिए रचनाएँ भेजने की बात, मेरे आग्रह के पूर्व ही कर रहा है। उन्होंने आविष्कार के लिए विज्ञान कथा भेजी और फिर लेख भेजने का सिलसिला सालों-साल चलता रहा। शुकदेव जी जैसे लेखकों से पाठकों से पहले संपादकों के ज्ञान के कपाट खुलते हैं। यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे उनका सानिध्य प्राप्त हुआ और वे समय-समय पर आविष्कार के लिए रचनाएँ भेजते रहते रहे। उनके लेख प्रकाशित करके मैं स्वयं 'प्रकाशित' हुआ।

उस मुलाकात के बाद से हम लोगों के बीच टेलीफोन-वार्तालाप का सिलसिला शुरू हुआ। पर अब शुकदेव जी का फोन नहीं आता ...और अब आएगा भी नहीं। उनके दुनिया से विदा लेने से कुछेक दिन पहले ही फोन से उनसे बात हुई थी। अक्सर बातें होती थीं, खूब बातें होती थीं। फिर भी लगता था कि बात अभी पूरी नहीं हुई है। आगे के लिए गुंजाइश छोड़ते हुए कहीं ना कहीं हम अल्प विराम लगाकर रुक जाते थे, पूर्ण विराम लगाए बिना वे चले जाएंगे, ऐसा आभास न था। कोई वाक्य अधूरा रह जाए तो क्या किया जाए, जीवन में व्याकरण के नियम तो चलते नहीं हैं। शुकदेव चले गए, अपनी कही बातें छोड़ गए, अपनी यादें छोड़ गए। वह व्यक्ति जाने के बाद अब बहुत याद आता है। अनोखा व्यक्ति था, जिसमें अच्छाइयाँ थी और बुराइयाँ थी। अच्छाइयाँ, दूसरों के लिए और बुराइयाँ स्वयं के लिए।

हम तो उसकी अच्छाइयों से लाभान्वित होते रहे और वह अपनी बुराइयों का नुकसान उठाता रहा। अपने स्वास्थ्य के प्रति डॉक्टरों की चेतावनी के बावजूद भी बिल्कुल लापरवाह रहे। वे तमाम कठिनाइयों के बावजूद, धाराओं के विपरीत तैर कर हिंदी विज्ञान साहित्य के लिए बहुत कुछ कर गए। निश्चय ही हिंदी विज्ञान साहित्य को अपने लेखों, कथाओं आदि से समृद्ध करने में शुकदेव जी का बहुत बड़ा योगदान है। अपने उच्च कोटि के विज्ञान साहित्य की बदौलत वे हमारे बीच हमेशा रहेंगे।

राधाकान्त अंथवाल, पूर्व वरिष्ठ संपादक, आविष्कार और इंवेंशन इंटेलिजेंस। जन्म 1 मई 1959, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड। विज्ञान में स्नातक और पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा। 700 से अधिक लेख और 8 विज्ञान नाटक राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 5 विज्ञान नाटक और 250 से अधिक विज्ञान विषयक वार्ताएं आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से प्रसारित। विज्ञान प्रसार के अंतर्गत एडुसैट संचालित कार्यक्रम और राष्ट्रीय विज्ञान चौनल में विज्ञान विषयक वार्ताओं में सम्मिलित। वर्तमान में स्वतंत्र विज्ञान लेखन और संपादन।

anthwalrk@yahoo.com

विज्ञान लेखन उनका शौक ही नहीं मिशन भी था

डॉ. दिनेश मणि

शुकदेव प्रसाद जी के अचानक हृदयाघात से चले जाने की खबर ने स्तब्ध कर दिया। कभी सोच भी नहीं सकता था कि वे इतनी जल्दी हम लोगों के बीच से चले जायेंगे। स्वभाव से अक्खड़ किन्तु स्वाभिमानी शुकदेव प्रसाद जी हिन्दी विज्ञान लेखन के एक सशक्त हस्ताक्षर थे। विज्ञान लेखन उनका शौक ही नहीं, मिशन भी था। इसके लिए उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया।

शुकदेव प्रसाद जी से मेरा सम्पर्क लगभग चार दशक पुराना था। फरवरी 1991 में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में 'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नये आयाम' विषयक संगोष्ठी में हम लोग सम्मिलित हुए थे। मार्च 1994 में जोधपुर में आयोजित 'राजस्थान की जनजातियों एवं नवसाक्षरों के लिए विज्ञान लेखन' विषयक संगोष्ठी में भी हम लोगों ने सहभागिता की थी। अनेक विज्ञान लेखन संगोष्ठियों एवं शब्दावली कार्यशालाओं में हमने उन्हें प्रभावी ढंग से अपने विचार व्यक्त करते हुए सुना। वे बड़ी बेबाक शैली में अपनी बात कहते थे।

शुकदेव प्रसाद जी की विज्ञान साहित्य साधना निश्चित ही हम सब के लिए गौरव का विषय रही है। विविध जनोपयोगी विषयों से लेकर गूढ़ वैज्ञानिक विषयों तक को आपने सहज-सरल ढंग से अभिव्यक्त किया है। लोकप्रिय विज्ञान शृंखला के अन्तर्गत आपने बच्चों के लिए अनेक छोटी-छोटी पुस्तकें तैयार की हैं। वैज्ञानिकों के रोचक संस्मरणों को भी आपने बड़ी ही सरल सुबोध शैली में प्रस्तुत किया है। वह लिखते समय अपने पाठकवर्ग का विशेष रूप से ध्यान रखते थे और पठनीयता, रोचकता व सहजता से पाठक तक अपनी बात संप्रेषित करते थे। शुकदेव प्रसाद जी ने लोकप्रिय विज्ञान साहित्य को अपने कृतित्व से अप्रतिम गौरव प्रदान किया है। उनका लेखन बहुआयामी रहा है और विधाओं की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण भी।

हिन्दी भाषा के माध्यम से विज्ञान के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान हेतु 25 अक्टूबर 2021 को विज्ञान परिषद् प्रयाग की ओर से उनका अभिनन्दन किया गया। विज्ञान परिषद् प्रयाग से वे 1970 के दशक से ही जुड़े थे। विज्ञान परिषद् प्रयाग देश के लगभग सभी विज्ञान लेखकों की पाठशाला रही है। शायद ही कोई ऐसा विज्ञान लेखक हो जो विज्ञान परिषद् प्रयाग से किसी न किसी रूप में जुड़ा

न रहा हो। इस अवसर पर मैंने विज्ञान लेखन एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी जिजीविषा एवं जुनून के बल पर उनके द्वारा किए गए महत्वपूर्ण योगदानों पर प्रकाश डाला। निश्चित ही हिन्दी विज्ञान साहित्य के अतुल वैभव को पुस्तकों के रूप में सुरक्षित कर देने का महत् कार्य शुकदेव प्रसाद जी ने किया है। श्री गुणाकर मुळे जी के बाद संभवतः शुकदेव प्रसाद जी ही एक ऐसे विज्ञान लेखक हैं जिन्होंने स्वतंत्र लेखन (फ्री लांसिंग) करते हुए अपना जीवन-यापन किया है और विज्ञान लेखन के कार्य को एक मिशन की तरह लिया है। शुकदेव प्रसाद जी स्वभाव से अक्खड़ किन्तु विस्मित कर देने वाली विद्वता और लेखकीय प्रतिबद्धता की अद्‌भुत मिसाल थे। शुकदेव प्रसाद जी जिस चीज का भी संकल्प कर लेते थे और जब तक वह उद्‌देश्य पूर्ण नहीं हो जाता था, तब तक चैन से नहीं बैठते थे। वे विज्ञान एवं साहित्य दोनों में समन्वय स्थापित करते हुए विज्ञान लेखन करते थे। ऐसी प्रवृत्ति बहुत कम लोगों में होती है कि वे दूसरों की कृतियों का अध्ययन करें। शुकदेव प्रसाद जी ने विशद अध्ययन किया था और अपनी कल्पनाशीलता के बल पर सृजन के अनेक कीर्तिमान स्थापित किए।

डॉ.दिनेश मणि रसायन विभाग इलाहाबाद में प्रोफेसर रहे। आपने डाक्टरेड उपाधि हेतु 22 छात्रों का निर्देशन किया। विज्ञान विषयों पर 50 किताबें, अंग्रेजी में 8 पुस्तकें एवं सौ शोध पत्र प्रकाशित हैं। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर 30 वार्ताएं प्रसारित हुईं हैं। सरस्वती नामित पुरस्कार, बायोटेक हिन्दी ग्रंथ पुरस्कार, सूचना प्रौद्योगिकी राष्ट्रीय पुरस्कार, अनुसृजन सम्मान, डॉ. सम्पूर्णानंद नामित पुरस्कार, बाबूराव विष्णु पडारकर नामित पुरस्कार, जगदीश गुप्त सर्जना पुरस्कार, बाबू श्यामसुंदर सर्जना पुरस्कार, आत्माराम पुरस्कार, डॉ. जगदीश चंद्र बोस पुरस्कार, इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार सहित अनेक सम्मान से आप सम्मानित हुए हैं।

शुकदेव प्रसाद जी ने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित लगभग सभी विषयों पर लेखन किया है। विज्ञान के किसी भी दुरूहतम समझे जाने वाले विषय से लेकर किसी भी समसामयिक अथवा परिवेशगत विषय पर सुरुचि-सम्पन्न शैली में विपुल विज्ञान लेखन किया है। समग्र अध्ययन और गहराई के कारण उनके कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं ।

सौ से अधिक वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रणयन के अतिरिक्त शुकदेव प्रसाद जी ने विज्ञान भारती, विज्ञान वैचारिकी एवं पर्यावरण दर्शन, अभिनव विज्ञान भारती पत्रिकाओं का कुशल संपादन किया। 'प्रतियोगिता सम्राट' तथा 'प्रतियोगिता चयनिका' जैसी प्रतियोगी पत्रिकाओं के संस्थापक संपादक रहे। कई अन्य पत्रिकाओं के अतिथि संपादक भी रहे। विज्ञान वैचारिकी अकादमी, इलाहाबाद के निदेशक रहे। अपनी अकादमी के माध्यम से कई वैज्ञानिक संगोष्ठियों का आयोजन किया।

शुकदेव प्रसाद जी की इतनी बड़ी उपलब्धियों के पीछे उनकी सुदीर्घ साधना, संपूर्ण समर्पण, अटल निष्ठा तथा अकूत विश्वास रहा है। उन्होंने हिन्दी विज्ञान लेखन के लिए अपने जीवन को होम कर दिया। इन्हीं विशेषताओं के कारण ही वे हिन्दी विज्ञान लेखन के सुपरिचित हस्ताक्षर के रूप में स्थापित हुए। आपने लोकप्रिय विज्ञान साहित्य के पुनीत व्रत में अपने जीवन की सार्थकता अनुभव की और अपने जुनून से अनेक ऊँचाइयां स्पर्श की। 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार' पाने वाले एकमात्र विज्ञान लेखक का गौरव उन्हें प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उन्हें प्रतिष्ठित 'आत्माराम सम्मान' सहित केन्द्र व राज्य सरकार के अनेक सम्मान प्राप्त हुए।

उनका मानना था कि 'किसी भी समाज के निर्माण में जो शक्तियाँ वांछनीय हैं उनमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। दुनिया के तमाम देश वैज्ञानिक गतिविधियाँ को जोरदार तरीके से बढ़ावा देने के लिए हमेशा तत्पर हैं किन्तु किसी समाज के विकास के किसी खास चरण में जो प्रश्न उठाए जाते हैं और जो अन्तर्दृष्टि विकसित होती है, उसका सम्बन्ध उस समाज की व्यापक प्राथमिकताओं से होता है। इसका संबंध उस भूमिका से भी होता है जिसे निभाने की अपेक्षा हम उस काल के विज्ञान और प्रौद्योगिकी से करते हैं। वास्तव में

विज्ञान और प्रौद्योगिकी अधिकाधिक उपयोग जनसाधारण की भलाई के लिए होना चाहिए।'

वे अक्सर कहा करते थे कि 'लोकप्रिय विज्ञान लेखकों एवं पत्रकारों को यह बात भली-भांति समझ लेनी चाहिए कि वे वैज्ञानिकों या बुद्धिजीवियों के लिए नहीं लिख रहे हैं, एक आम आदमी के लिए लिख रहे हैं, भाषा शैली इस प्रकार की हो कि वह विज्ञान समाचार को आसानी से समझ सके। भाषा-शैली जितनी साधारण और आसान होगी उतनी ही जल्दी पाठक उसे समझ पाएगा और उसे आगे पढ़ने की उत्सुकता होगी। सरलता और सरसता किसी भी लेखन (चाहे व विज्ञान हो या साहित्य) की रीढ़ है। विज्ञान के जटिल से जटिल सिद्धांत, तथ्यों की पूरी प्रामाणिकता के साथ, सरल, बोधगम्य भाषा में प्रस्तुत किए जा सकते हैं लेकिन इसके लिए विषय का गहराई से ज्ञान होना बहुत आवश्यक है।'

सामान्य जनमानस में लेखकों के प्रति एक आमधारणा यह है कि उनका जीवन एकदम नीरस, एकांतिक और अलग-थलग किस्म का होता है। परंतु ऐसा नहीं है। लेखकों का जीवन भी सामाजिकता से परिपूर्ण होता है और संघर्ष पूर्ण भी, हमारी-आपकी ही तरह। उनके भी सामाजिक सरोकार और उत्तरदायित्व होते हैं। उन्हीं के साथ वे भी जीते और मरते हैं।

विज्ञान लेखन के साथ-साथ उनका संपादन कौशल भी बेजोड़ था। विज्ञान को सरल, सहज और सभी को समझ में आने वाली भाषा में प्रस्तुतिकरण द्वारा आपने जनमानस में विज्ञान का प्रचार-प्रसार किया। हिन्दी विज्ञान लेखन एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में शुकदेव प्रसाद जी के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकेगा।

dineshmanidsc@gmail.com

शुकदेव जी की कैफियत उनकी कहानीकला की बुनियादी शर्तों को उद्घटित करती है। साथ ही उनकी कहानी कला के समीक्षण के मानदंड भी। जैसा कि उन्होंने कहा है कि मेरी कथाएँ भावी विज्ञान का संधान नहीं करती। सच है कि कथाकार का काम भी यह नहीं है, कथाकार तो विज्ञान के नूतन आविष्कारों का आधार लेकर एक ऐसे मायालोक का सृजन करता है जो रमणीय भी होता है तथा आने वाले जीवन की गुत्थियों को सुलझाने का मार्ग भी प्रशस्त करता है। शुकदेव जी की कोई भी कहानी लीजिए, प्रत्येक भाव जीवन के प्रति आशावाद का सुर छेड़ती नज़र आती है, 'वसुधैव कुटुम्बकम' लीजिए या 'अंतरिक्ष के मित्र'। शुकदेव जी विज्ञान कथाएं लिखते हैं, तब विज्ञान तथा विज्ञान के प्रभा को मानववादी नज़रिये से देखना अधिक पसंद करते हैं।

- डॉ. रवीन्द्र अंधारिया

बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा

सुभाष चंद्र लखेड़ा

हिंदी विज्ञान लेखक श्री शुकदेव प्रसाद के निधन के बाद अक्सर मुझे अलामा इकबाल का ये प्रसिद्ध शेर रह रहकर याद आता है–

‘हज़ारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।’

महज चालीस वर्ष की उम्र में हिंदी विज्ञान लेखन के लिए आत्माराम पुरस्कार से सम्मानित होने वाले शुकदेव प्रसाद अकेले ऐसे हिंदी विज्ञान लेखक हैं जिन्हें अनेकानेक दूसरे पुरस्कारों के साथ सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार से भी सम्मानित होने का गौरव प्राप्त हुआ। यह भारत एवं सोवियत संघ के बीच मित्रतापूर्ण संबंधों को ध्यान में रखते हुए भारत के साहित्यकारों एवं कलाकारों को दिया जाने वाला एक पुरस्कार है जिसे सोवियत संघ की ओर से भारत-स्थित सोवियत दूतावास के तत्वावधान में प्रदान किया जाता रहा है। स्वर्गीय श्री शुकदेव प्रसाद को यह पुरस्कार उनकी पुस्तक ‘अंतरिक्ष में भारत-सोवियत मैत्री’ के लिए सन् 1986 में तब नवाज़ा गया था जब उनकी आयु सिर्फ तीस वर्ष थी।

खैर, कोरोना के चलते इस बार अमेरिका से हमारी वापसी लगभग सवा दो वर्ष बाद हुई। अमेरिका प्रवास के दौरान एक बार श्री मोहन सगोरिया, से मालूम हुआ कि मित्र शुकदेव मुझे याद कर रहे थे तो मैंने ईमेल से श्री शुकदेव प्रसाद को यह जानकारी दी थी कि मैं अमेरिका में हूँ और वापस आने पर उनसे संपर्क करूँगा।

यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि मेरे को ‘इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए’ पत्रिका से जोड़ने की पहल भी आज से लगभग एक दशक पूर्व मित्र शुकदेव ने ही की थी। श्री मोहन सगोरिया ने एक बार आपसी गुफ़्तगू के दौरान मुझे यह बात बताई थी।

सुभाषचंद्र लखेड़ा रक्षा शरीरक्रिया एवं संबद्ध विज्ञान संस्थान (डिपास), डीआरडीओ से वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद से सेवा-निवृत्त हुए हैं। वे मूलतः एक वैज्ञानिक रहे हैं और उन्होंने अपने लेखकीय अवदान से लोकविज्ञान लेखन को समृद्ध किया है। हार्डकोर विज्ञान संबंधी शोध के समांतर लखेड़ा जी आम जन को विज्ञान की गूढ़ बातों को सरल भाषा शैली में समझाने का महत्वपूर्ण कार्य विगत लगभग तीन दशकों से करते आ रहे हैं। उनके विज्ञान लोकप्रियकरण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के प्रतिष्ठित 'आत्माराम पुरस्कार' सहित अनेक उल्लेखनीय पुरस्कारों व सम्मानों से विभूषित किया जा चुका है। डिजिटल मंचों पर वे पिछले कुछ वर्षों से अपने यात्रा संस्मरणों को समय-समय पर लिखते रहे हैं। एक विज्ञान लेखक का यह आयाम अनोखा और प्रेरणाप्रद है।

खैर, जब मैंने यह ईमेल भेजी थी तब मुझे मालूम न था कि इस बार अमेरिका में हमें लंबे समय तक रुकना पड़ेगा। कोरोना का क़हर कुछ थमा तो फ़रवरी 2022 में हम स्वदेश लौटे। बहरहाल, जैसा कि अपेक्षित था, अभी तक हम उन समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त हैं जो हमारे विदेश में लंबे समय तक रहने के दौरान जटिल होती रही। फलस्वरूप, किसी भी मित्र से इस दौरान मैं संपर्क न कर पाया।

पंद्रह मई को शाम को मोबाइल पर नज़र पड़ी तो देखा कि कोई मिस कॉल था। तुरंत वह नंबर मिलाया तो ख़ुशी हुई कि दूसरी तरफ़ विज्ञान के सशक्त हस्ताक्षर और मित्र शुकदेव प्रसाद थे। कुशल क्षेम पूछने के बाद वे बोले कि तुम्हें देहरादून से प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिका 'विज्ञान संप्रेषण' में भी अपने लेख भेजने चाहिए। मैंने उन्हें बताया कि मैंने इस पत्रिका के लिए अभी कुछ दिन पहले विज्ञानकु भेजे हैं और मैं भविष्य में लेख भी भेजूँगा।

सोलह मई को मित्र शुकदेव का फिर फोन आया जिसमें उन्होंने मुझे अन्य बातों के अलावा यह भी बताया कि अगर समय रहते उन्होंने अपनी आँखों का उपचार न किया तो वे पूर्ण रूप से अंधे हो सकते हैं। मैंने उन्हें जो कुछ कहा, उसकी चर्चा से अब कोई लाभ नहीं क्योंकि अब वे इस नश्वर संसार से विदा हो गए हैं। सोमवार तेईस मई के दिन उनको दिल का दौरा पड़ा और फिर वे वहाँ पहुँच गए जहाँ कोई सांसारिक समस्या तंग नहीं करती।

चौबीस मई मंगलवार के दिन जब मुझे विज्ञान परिषद् प्रयाग के माध्यम से यह दुःखद खबर पढ़ने को मिली तो मैं स्तब्ध रह गया। पत्नी स्नानागार में थी और मैंने दरवाज़ा खटखटाकर उन्हें यह दुःखद बात बतायी। वे भी यह सुनकर व्यथित होते हुए बोली, "क्या कह रहे हो? वे तो उस दिन आपसे खूब देर तक बात करते रहे?"

अब जब श्री शुकदेव प्रसाद की देह पंच तत्वों में समा चुकी है, तब भी उनके चले जाने पर यक़ीन नहीं हो रहा है। वे तो सप्ताह पहले मेरे से ठीक उसी अक्खड़ अन्दाज में बातचीत कर रहे थे जैसे वे हमेशा से करते रहे।

हिंदी विज्ञान लेखन के इस प्रकाशस्तंभ से मेरी पहली मुलाक़ात सन् 1986 में तब हुई थी जब वे लोक विज्ञान परिषद द्वारा भारतीय विद्या भवन में 19-20 जुलाई को 'विज्ञान लोकप्रियकरण की चुनौतियां' विषय पर आयोजित एक द्विदिवसीय सेमिनार में शिरकत करने दिल्ली आए थे। उल्लेखनीय है कि लोक विज्ञान परिषद डॉ.ओम विकास और उनके सहयोगियों द्वारा सन् 1984 में स्थापित एक स्वैच्छिक संगठन है जिसका उद्देश्य समाज में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाना और लोगों को नवीन और अनुसंधान उन्मुख बनाना है। परिषद हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में विभिन्न प्रकार की गतिविधियों और कार्यक्रमों का आयोजन करके लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने की दिशा में कार्य कर रही है।

बहरहाल, उन्होंने और मैंने जिस सत्र में अपने पर्चे पढ़े, उसकी अध्यक्षता प्रोफेसर यशपाल कर रहे थे। उनके झोले में उस वक्त विज्ञान के विभिन्न विषयों पर लिखी कोई सात-आठ पुस्तकें मौजूद थी जिन्हें उन्होंने अपने भाषण के दौरान उपस्थित श्रोताओं को दिखाया था। उसी दिन मुझे यह मालूम हो गया था कि शुकदेव हिंदी विज्ञान लेखन की लंबी रेस के घोड़े हैं।

उसके बाद उनसे मेरी दूसरी मुलाकात तब हुई जब मैं सन 1989 में भारतीय

भाषा संस्थान मैसूर और विज्ञान परिषद् प्रयाग के संयुक्त तत्वावधान में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में 'हिंदी एवं उर्दू में लोकप्रिय विज्ञान लेखन' विषय पर 11 सितंबर से लेकर 15 सितंबर तक आयोजित पाँच दिवसीय कार्यशाला में भाग लेने इलाहाबाद पहुँचा। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि मैंने मित्र शुकदेव की ऐसे कार्यक्रमों में कभी कोई विशेष रुचि नहीं देखी। वजह शायद हमेशा यही रही कि वे हिंदी में विज्ञान लेखन के उन चौराहों को पार कर चुके थे जो इस क्षेत्र में कदम रखने वालों को परेशान किया करते हैं।

शुकदेव जी से मेरी तीसरी मुलाक़ात तब हुई जब वे सन् 1991 में भारतीय भाषा संस्थान मैसूर द्वारा तब के 'पीआईडी' और आज की नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस कम्युनिकेशन एंड पॉलिसी रीसर्च (राष्ट्रीय विज्ञान संचार और नीति अनुसंधान संस्थान), नई दिल्ली में दिसंबर 22 से 27 के दौरान ''साइंस राइटिंग फ़ॉर मास कम्युनिकेशन इन मीडिया'' विषय पर आयोजित कार्यशाला में बतौर प्रशिक्षु भाग लेने दिल्ली आए थे।

मुझे याद है कि वे इस कार्यशाला में नियमित रूप से नहीं आ पाते थे। फलस्वरूप, आयोजकों ने उनको उन्हीं दिनों का दैनिक भत्ता दिया था जब वे उपस्थित रहे। दरअसल, यह वह समय काल था जब वे बतौर अतिथि संपादक दिल्ली से प्रकाशित होने वाली मैगज़ीन 'प्रतियोगिता सम्राट' के संपादन की ज़िम्मेदारी निभा रहे थे।

उल्लेखनीय बात यह रही कि उस कार्यशाला के समापन के बाद उन्होंने मेरे से पालिका बाज़ार चलने का आग्रह किया। वे किसी ऐसे किशोर के लिए जूता ख़रीदना चाहते थे जिसे वे अपने खर्चे पर पढ़ा रहे थे।

उस दिन हम कार्यशाला के समापन समारोह के बाद पहले नई दिल्ली के पालिका बाज़ार गए और फिर वहाँ से वे मेरे साथ मेरे सरकारी निवास एक्स - 360 सरोजिनी नगर आए। वे उस रात हमारे अतिथि रहे और अगले दिन शनिवार यानी 28 दिसंबर को इलाहाबाद के लिए रवाना हुए।

दरअसल, विज्ञान लेखक होने के अलावा हम दोनों में कुछ ऐसी समानताएँ थीं जिनकी वजह से हम जब भी किसी कार्यक्रम के दौरान मिलते थे, दूसरे मित्रों की तुलना में हम एक दूसरे के साथ अपेक्षाकृत अधिक वक्त बिताते थे। वे भी आजीवन धूम्रपान के शौक़ीन रहे और मैं भी लंबे समय तक इस व्यसन का शिकार रहा। मैं भी अपने विचार प्रकट करते समय हानि-लाभ का हिसाब नहीं लगाता हूँ और ऐसा ही कुछ उनके साथ भी था। गौरतलब है कि उनका निजी जीवन जैसा भी रहा हो, विज्ञान लेखन के लिए वे ताउम्र समर्पित रहे। पूर्ण स्वतंत्रता के पक्षधर श्री शुकदेव संभवतया इसीलिए विवाह बंधन में नहीं बंधे क्योंकि वे

तुरशन पाल पाठक जी और शुकदेव जी, दोनों को एक साथ सन् 1996 का आत्माराम पुरस्कार दिया गया था। उस शाम जब मैं अपने मित्र डॉ. त्रिभुवन नाथ उपाध्याय के साथ पाठक जी के शव को लेकर सड़क मार्ग से दिल्ली के लिए रवाना होने वाला था, मैंने देखा शुकदेव अपने आँसुओं को छुपाने की असफल कोशिश कर रहे थे। दरअसल, श्री तुरशन पाल पाठक जी से श्री शुकदेव प्रसाद के बड़े आत्मीय संबंध थे।

जीवन को अपने हिसाब से जीना चाहते थे। पिछले पैंतीस वर्षों के दौरान हम दोनों की दिल्ली और इलाहाबाद (प्रयागराज) में निरंतर मुलाकातें होती रहीं। ऐसी ही एक कभी न भूलने वाली याद उनसे उस मुलाकात की है जो तब हुई थी जब वे हिंदी विज्ञान के वरिष्ठ लेखक श्री तुरशन पाल पाठक की विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभागार में 11 अप्रैल 2005 की सुबह दिल का दौरा पड़ने से हुए निधन की खबर सुनकर भागते हुए परिषद् भवन पहुँचे थे। उल्लेखनीय है कि तुरशन पाल पाठक जी और शुकदेव जी, दोनों को एक साथ सन् 1996 का आत्माराम पुरस्कार दिया गया था। उस शाम जब मैं अपने मित्र डॉ. त्रिभुवन नाथ उपाध्याय के साथ पाठक जी के शव को लेकर सड़क मार्ग से दिल्ली के लिए रवाना होने वाला था, मैंने देखा शुकदेव अपने आँसुओं को छुपाने की असफल कोशिश कर रहे थे। दरअसल, श्री तुरशन पाल पाठक जी से श्री शुकदेव प्रसाद के बड़े आत्मीय संबंध थे।

जहाँ तक हिंदी विज्ञान लेखन से जुड़े पुरस्कारों का सवाल है, ऐसा कोई पुरस्कार नहीं है जो उन्हें न मिला हो। गत वर्ष विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा उनकी 67वीं वर्षगांठ के अवसर पर आयोजित अभिनन्दन समारोह में उनको सम्मानित किया गया था। इस अवसर पर प्रोफेसर कृष्ण बिहारी पाण्डेय मुख्य अतिथि थे और प्रोफेसर शिवगोपाल मिश्र ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। प्रो. मिश्र ने शुकदेव जी के विज्ञान परिषद से दीर्घकालीन जुड़ाव का उल्लेख करते हुए उनको बधाई देते हुए तब इस तथ्य का भी उल्लेख किया था कि श्री शुकदेव प्रसाद ने हिंदी में विज्ञान लेखन

करते हुए प्रचुर साहित्य सृजन किया है और अनेकानेक पुरस्कार प्राप्त किये हैं।

कुल मिलाकर, विज्ञान से जुड़ा शायद ही कोई ऐसा विषय होगा जिस पर उन्होंने कलम न चलाई हो। आप विज्ञान के किसी भी विषय के बारे में सोचिए, आपको उस विषय पर उनकी पुस्तक मिल जाएगी। भारत का परमाणु कार्यक्रम, भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम, भारत का संचार कार्यक्रम या फिर विज्ञान और प्रौद्योगिकी से जुड़ा कोई भी ऐसा कार्यक्रम शेष नहीं बचा जो उनकी लेखनी से अछूता रहा हो। लोकप्रिय विषयों पर विज्ञान लेखन के साथ-साथ उन्होंने विज्ञान कथाओं के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है। उनके चर्चित विज्ञान कथा प्रकाशनों में बाल विज्ञान कथाएँ, भारतीय विज्ञान कथाएँ-1, भारतीय विज्ञान कथाएँ-2 और विश्व विज्ञान कथाएँ उल्लेखनीय हैं। विज्ञान कथाओं को लेकर उन्होंने जो भी कार्य किए हैं, वे 'प्रत्यक्षम् किम् प्रमाणम्' की कहावत को चरितार्थ करते हैं।

वे स्वर्गीय श्री गुणाकर मुळे के बाद स्वर्गीय शुकदेव ऐसे दूसरे लेखक हैं जिन्होंने स्वयं को पूरी तरह से हिंदी विज्ञान लेखन को समर्पित किया और इसी के सहारे अपना जीवन बिताया।

चौबीस अक्तूबर सन् 1956 में बस्ती जिले के एक शिक्षक परिवार में जन्में श्री शुकदेव प्रसाद ने अपना पूरा जीवन पढ़ने-लिखने में बिताया। सही या ग़लत लेकिन यह सच है कि हिंदी विज्ञान लेखन के इस मसीहा ने अपना जीवन अपनी शर्तों पर जिया। सन् 2015 में विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित विज्ञान के 'सुभाष चंद्र लखेड़ा सम्मान अंक' के लोकार्पण समारोह में शामिल होने जब मैं सपत्नीक इलाहाबाद (प्रयागराज) पहुँचा तो शाम को लौटते वक्त परिषद् भवन के मुख्य द्वार पर श्री शुकदेव हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसा कभी नहीं हुआ कि हमारे इलाहाबाद पहुँचने पर कभी मित्र शुकदेव मिलने न आए हों। विज्ञान लेखक स्वर्गीय प्रेमानंद चंदोला जी जब तक जीवित रहे, शुकदेव को अनुज जैसा स्नेह देते रहे। सन् 1989 में मुझे उनके साथ एक बार इनके 34 एलनगंज (इलाहाबाद) वाले निवास पर जाने का अवसर मिला था। उनके कमरे में ऐसी कोई जगह नहीं थी जहाँ विज्ञान की पुस्तकें न थी।

चौबीस मई मंगलवार के दिन जब मैंने उनके निधन का समाचार पढ़ा तो मुझे स्वयं को समझाने और संभालने में कुछ वक्त लगा। फिर मुझे हिंदी के वरिष्ठ कवि सुरेंद्र शर्मा जी की वह कविता याद आयी जिसमें वे कहते हैं,

आज एक बार कहें, आखिरी बार कहें।
क्या पता तुम न रहो, क्या पता हम न रहें।।

subhash.surendra@gmail.com

हिन्दी के भविष्य के लिए आवश्यक है कि मात्र रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में ही प्रगति न करें, बल्कि विज्ञान चिकित्सा, तकनीकी की दृष्टि से भी अभिव्यक्ति के योग्य बन सके। इलाहाबाद ने बड़े-बड़े राजनेता, साहित्यकार और शिक्षाविद् पैदा किये हैं, परन्तु विज्ञान लेखक के रूप में शुकदेव प्रसाद को छोड़कर कोई दूसरा नज़र नहीं आता। वह एक ऐसी शख़्सियत हैं जिन्होंने वनस्पति विज्ञान व अर्थशास्त्र की स्नातकोत्तर उपाधियाँ प्राप्त कीं। उन्हें अब तक बीसियों प्रतिष्ठित संस्थानों द्वारा सम्मानित किया जा चुका है, जिसे देखते हुए ममता कालिया ने उनका नाम 'पुरस्कार प्रसाद' रख दिया। हमारे मित्र और इलाहाबाद के विशेष अधिवक्ता श्री उमेश कुमार नारायण शर्मा भी उन्हें इसी नाम से पुकारने लगे। वह ऐसे उपग्रह हैं जो घर बैठे-बैठे विश्व की परिक्रमा करते रहते हैं। उन्होंने भारत और विश्व के विज्ञान-रत्नों पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। लेकिन यह कहना गलत न होगा कि वह इलाहाबाद के विज्ञान रत्न हैं। इलाहाबाद से छोड़ा गया एक प्रक्षेपास्त्र हैं। विज्ञान और आविष्कार से सम्बन्धित शायद ही कोई विषय हो जिस पर उनकी कलम न चली हो। भारत में कम्प्यूटर युग आया, तो वह कम्प्यूटर पर लिखने लगे। भारत ने परमाणु परीक्षण किया तो उन्होंने उस पर अनुसंधान कर लिया और 'परमाणुओं की छाया में' तथा 'भारत एवं शेष नाभिकीय विश्व' जैसे गौरव ग्रंथों की रचना की।

जो शख्स धरती पर बैठे-बैठे सौर परिवार पर धारावाहिक लिख सकता है, उसके मन की उड़ान की कल्पना की जा सकती है। शुकदेव जी ने कई विज्ञान पत्रिकाओं का भी कुशल संपादन किया है। ऐसे ही एक अवसर पर उनसे अगस्त 1978 में मेरी पहली भेंट हुई थी। अवसर था उनके द्वारा संपादित 'विज्ञान भारती' के विमोचन का। म्योर सेंट्रल कॉलेज के विजयानगरम हाल में दिल्ली से पधारे सी.एस.आई.आर. के पूर्व महानिदेशक डॉ. आत्माराम ने 'विज्ञान भारती' की प्रथम प्रति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ. बाबूराम सक्सेना को भेंट की। यह पड़ाव शुकदेव जी के कैरियर का महत्वपूर्ण मोड़ था, पहले ही अंक में वे मजे हुए संपादक के रूप में नज़र आए। आगे चलकर 'विज्ञान भारती' ने विशाल पाठक वर्ग बनाया और शुकदेव जी ने कई नवोदित रचनाकारों को प्रोन्नत किया।

- रवीन्द्र कालिया

विज्ञान लेखन के अप्रतिम हस्ताक्षर

डॉ. प्रदीप कुमार मुखर्जी

शुकदेव प्रसाद के निधन से हिंदी विज्ञान लेखन के क्षेत्र में एक शून्य उपजा है जिसकी पूर्ति कठिन लगती है। शुकदेव ने विज्ञान को आम आदमी तक उसकी भाषा में लाने में अप्रतिम कार्य किया। इसकी परिणति 150 से अधिक पुस्तकों और लगभग 5,000 लेखों के रूप में हुई। इस कार्य के लिए उन्हें अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार भी मिले, जिनमें सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। यह पुरस्कार उन्हें अंतरिक्ष में भारत सोवियत मैत्री शीर्षक पुस्तक पर मिला था। सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड लेने वाले शुकदेव अकेले हिंदी विज्ञान लेखक हैं।

शुकदेव की भाषा पर गहरी पकड़ थी। साथ ही विषय वस्तु की भी उन्हें सटीक समझ और अच्छी जानकारी थी। उनकी बेजोड़ और प्रभावशाली भाषा शैली उनके लेखों और पुस्तकों से साफ झलकती थी। प्रांजल और सरस भाषा में लिखी उनकी रचनाओं ने खासकर युवा लेखकों की पीढ़ी को बहुत प्रभावित और प्रोत्साहित किया। उनके लेख प्रतिष्ठित समाचार पत्रों और वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। सन 1976 में उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में दाखिला लिया था। उनके सचित्र लेख उन दिनों बनारस से प्रकाशित होने वाले प्रसिद्ध समाचार पत्र 'आज' में प्रकाशित होते थे। जीव जंतुओं की रोचक दुनिया शीर्षक से प्रकाशित होने वाली उनकी सीरीज विशेष रूप से लोकप्रिय हो रही थी। अन्य समाचार पत्रों में भी उन्होंने खूब लिखा, जिनमें बच्चों के लिए रोचक और सरल भाषा में उनके द्वारा लिखे लेख शामिल थे।

समाचार पत्रों के अलावा उनके लेख प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। इन पत्रिकाओं में आविष्कार, विज्ञान प्रगति, विज्ञान परिषद् प्रयाग से प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिका तथा जयपुर से प्रकाशित होने वाला विज्ञान पाक्षिक समाचार पत्र वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि शामिल थे। रेखांकित करने वाला तथ्य यह है कि शुकदेव ने अपने लेखन का श्रीगणेश विज्ञान पत्रिका से ही किया था। संभवतया इसी कारण विज्ञान परिषद के साथ उनका दीर्घकालीन जुड़ाव रहा।

उनकी 67वीं वर्षगांठ के अवसर पर विज्ञान परिषद द्वारा उन्हें सम्मानित लिया गया। प्रो.कृष्ण बिहारी पांडेय जो इस अभिनंदन समारोह के मुख्य अथिति थे, ने कहा कि 'शुकदेव प्रसाद ने हिंदी में विज्ञान लेखन करते हुए प्रचुर साहित्य का सृजन किया है और अनेक पुरस्कार प्राप्त किए हैं।' इस अवसर पर विज्ञान परिषद के प्रधानमंत्री डॉ. शिवगोपाल मिश्र ने भी शुकदेव का अभिनंदन किया और उनके लेखन पर अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. एस.एम.सिंह ने अपने अग्रज डॉ. रामलखन सिंह के नाम पर स्थापित फ़ेलोशिप शुकदेव को प्रदान की। उल्लेखनीय है कि अप्रैल 2022 में भोपाल में आयोजित बनमाली सम्मान समारोह में भी शुकदेव की गरिमामय उपस्थिति रही। इस अवसर पर उनके द्वारा छह खंडों में संपादित विज्ञान कथा कोश का विमोचन हुआ। उन्हें आईसेक्ट, 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' तथा आईसेक्ट के अंतर्गत आने वाले विश्वविद्यालय समूह द्वारा सम्मानित किया गया। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के साथ शुकदेव का जुड़ाव कई दशकों तक रहा और विविध विषयों पर लिखे उनके अनेक लेखों ने इस विज्ञान एवं तकनीकी पत्रिका की शोभा बढ़ाई।

शुकदेव पहले एलनगंज रहते थे, लेकिन बाद में वह छोटा बघाड़ा के मकान में शिफ्ट कर गए। जब शुकदेव एलनगंज रहते थे तो वहाँ चौराहे में चाय का अड्डा जमाते थे। उनके कई निकट मित्र इस अड्डे में अपनी शिरकत करते थे। इन मित्रों में नंदल हितैषी, धीरेंद्र शर्मा, प्रदीप भटनागर, पृथ्वीनाथ पांडेय और प्रशांत घोष आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इन लोगों के अलावा इस चाय के अड्डे में दूसरे तमाम और लोग भी आते-जाते रहते थे। चाय की चुस्कियों के बीच कौन क्या लिख रहा है और कैसा लिख रहा है इसकी ही

विशेष रूप से चर्चा होती थी। जिस दिन किसी की कोई रचना कहीं प्रकाशित होती तो वह गर्व से उसे वहाँ दिखाता। इसके साथ ही उस दिन की चाय के साथ मिठाई और समोसा भी वह खुशी-खुशी खिलाता। उस चाय अड्डे का मानो यह एक अघोषित 'एजेंडा' था।

एलनगंज चौराहे के बगल की एक गली में ही उनका कमरा था। यह कमरा किताबों तथा पत्र-पत्रिकाओं से इस कदर भरा रहता कि उसमें बैठने तक की जगह नहीं रहती। यही हाल छोटा बघाड़ा स्थित उनके मकान का था, जहाँ एक बार मुझे विज्ञान लेखक सुबोध महंती और आविष्कार के पूर्व वरिष्ठ संपादक राधाकान्त अंथवाल के साथ जाने का अवसर मिला था। असल में, विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित एक सम्मेलन में भाग लेने के लिए हम तीनों इलाहाबाद (प्रयागराज) गए थे। किताबों से अटी अलमारियों के बीच बैठे चाय की चुस्कियों के साथ उनके लेखन, पुरस्कार तथा व्यक्तिगत जीवन पर भी अनेक चर्चा हुई। साथ के कमरे में दीवार पर एक श्यामपट यानी ब्लैक बोर्ड भी बना था। उन्होंने बताया कि शाम के समय वह विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले छात्रों को विज्ञान के सामान्य ज्ञान की कोचिंग देते हैं। इसका प्रयोजन पूछे जाने पर उनके मुखारबिंद पर गहरे दुख के भाव उभर आए। बोले, 'विज्ञान लेखन से किसका गुजारा चलता है भला! इसलिए रोजी-रोटी के लिए मैं ये कक्षाएं चलाता हूँ।'

विज्ञान लेखन की बुलंदियों को छूने वाले शुकदेव स्वाभाव से कुछ मनमौजी और फक्कड़ किस्म के थे, बेबाक होकर मन की बात कह देते थे। कुछ लोग उन्हें अक्खड़ और घमंडी भी समझते थे। लेकिन ऐसा नहीं कि वह लोगों का सम्मान नहीं करते थे। जहाँ तक व्यक्तिगत मेरी बात है उन्होंने मुझे और मेरे लेखन को हमेशा सम्मान दिया। खासकर किसी सम्मेलन में व्याख्यान देते समय भौतिकी की बात उठने पर श्रोताओं को वह मेरे नाम की संस्तुति ज़रूर करते थे। संभवतया कुछ निजी कारणों एवं परिस्थितियों से उनकी जीवन धारा आम लोगों से कटकर कुछ अलग हो गई थी। इस कारण उनके कुछ करीबी मित्र उनसे कन्नी भी काट गए थे। लेकिन इसकी खास परवाह न करते वह अपने आप में ही मस्त रहे। ऐसा नहीं कि उन्हें इन बातों का गुमान नहीं था, लेकिन अपनी ही बनाई लक्ष्मण रेखा में कैद होकर और अपनी ही बनाई बेड़ियों में जकड़ कर वह लाचार होकर रह गए थे। विवशता यह भी थी कि जीवन की जिस राह को उन्होंने चुना था उससे पीछे लौटना उनके लिए संभव नहीं था। निम्न शेर पूरी तरह से इस स्थिति को बयां करता है :

रत्तीभर और मिल गया अंबार में तो क्या
लिख दो गुनाह खलक को मेरे हिसाब में।

हालाँकि जीविकोपार्जन के लिए उन्हें कड़ा संघर्ष करना पड़ा, लेकिन आरंभ में उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी भली थी। मगर बाद में, खासकर अपने अंतिम दिनों में वह मुफलिसी का शिकार हो गए। पिछले करीब पांच वर्षों से उनका स्वास्थ्य कुछ ढीला चल रहा था। वह अपनी आँखों का ऑपरेशन कराना चाहते थे। इसके लिए पैसों का जुगाड़ करने में लगे थे। लेकिन अपनी इस अधूरी तमन्ना के साथ ही उन्हें अपनी आँखें मूंदनी पड़ीं। लेखन अबाध गति से चलता रहे इसके लिए वह आजीवन अविवाहित रहे। विज्ञान लेखन को उन्होंने अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया। शुकदेव जैसे यशस्वी लेखक के निधन से हिंदी विज्ञान लेखन की अपूरणीय क्षति हुई है।

डॉ.पी.के.मुखर्जी ने भौतिकी में स्नातकोत्तर और पीएच.डी. की डिग्रियाँ हासिल कीं। एल.एल.बी. और एल.एल.एम. (स्वर्ण पदक) दिल्ली विश्वविद्यालय से। देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में वे एसोसिएट प्रोफेसर रहे। तकरीबन चार दशकों से वे विज्ञान लेखन बाल विज्ञान लेखन और विज्ञान संचार के क्षेत्र में सक्रिय रहे हैं। आपने पंद्रह सौ से अधिक लेख, आवरण कथाएँ तथा फीचर लिखे। विज्ञान रेडियो सीरियल के लिए स्क्रिप्ट लेखन आपने किया है। बाल विज्ञान कोश, रोमेश की बिल्ली, पुच्छल तारे का आश्चर्य लोक, तिल-तिल घिसती पेंसिल, रोबोट की निराली दुनिया, विज्ञान हमारे आस-पास, अंकों का जादू, टेक्नॉलॉजी, लेसर लाइट आदि आपकी चर्चित पुस्तकें हैं।

mukherjeepradeep21@gmail.com

पुस्तकों से अटा आवास

डॉ. कृष्णानंद पाण्डेय

अधिकांश विद्यार्थियों का इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने का उद्देश्य अपने प्रिय विषय से जुड़े क्षेत्रों में न केवल जगह बनाना, बल्कि अपनी प्रतिभा एवं अपने योगदानों से देश-दुनिया में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की ख्याति प्राप्त करना होता है। देश के कोने-कोने से आए अनेक विद्यार्थियों ने अपने-अपने क्षेत्रों में अपनी तपस्या और प्रतिभा के बल पर आगे चलकर न केवल अपने गाँव-मोहल्ले, शहर बल्कि स्वदेश और विश्व भर में प्रसिद्धि और महारत हासिल की है। साहित्य, शिक्षा, विज्ञान, राजनीति, कला, संगीत, रंग-मंच, कोई भी क्षेत्र लें, इस पावन संगम नगरी ने देश को शीर्षस्थ प्रतिभाएं सुलभ कराई हैं। महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', डॉ शंकर दयाल शर्मा, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह, डॉ. राम कुमार वर्मा, डॉ. सुमित्रानंदन पन्त, डॉ. महादेवी वर्मा, डॉ. हरिवंश राय बच्चन, डॉ. रघुपति सहाय (फिराक गोरखपुरी), डॉ. मुरली मनोहर जोशी, डॉ. श्रीकृष्ण जोशी, डॉ. एन.एस. परिहार, डॉ. डी.डी. नौटियाल, महानायक अमिताभ बच्चन के साथ-साथ अनेक महाविभूतियों ने प्रयागराज से शिक्षा ग्रहण कर देश-विदेश को अपना अमूल्य योगदान दिया है। इसी शृंखला में शुकदेव प्रसाद जी भी उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले (अब सिद्धार्थ नगर) से प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण कर उच्च शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से इलाहाबाद विश्वविद्यालय का रुख किए। विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय से अध्ययन के उपरांत अनेक शिक्षकों, वैज्ञानिकों, विद्वानों ने भारत के जनसाधारण, विद्यार्थियों, और विज्ञान इतर विषयों से सम्बद्ध विद्वानों में देश-विदेश की वैज्ञानिक गतिविधियों और उपलब्धियों को विज्ञान लेखों के माध्यम से जागरूकता फैलाने में जीवन खपाए हैं। डॉ. शिव गोपाल मिश्र, प्रेमचंद्र श्रीवास्तव, दर्शनानन्द, शुकदेव प्रसाद, डॉ विजय कुमार श्रीवास्तव, डॉ. जगदीप सक्सेना, डॉ. अरविन्द मिश्र, डॉ. दिनेश मणि, डॉ. धनंजय चोपड़ा, देवव्रत द्विवेदी जैसे विद्वानों के नाम विज्ञान सम्प्रेषण के क्षेत्र में अग्रणी पंक्ति में हैं।

दिनांक 23 मई, 2022 को प्रयागराज और देश के प्रतिष्ठित विज्ञान संचारक शुकदेव प्रसाद जी के निधन की सूचना ने विज्ञान लेखन जगत को स्तब्ध कर दिया। देश भर से शुकदेव प्रसाद जी को श्रद्धांजलि देने का सिलसिला कई दिन जारी रहा। शुकदेव प्रसाद जी के योगदानों के सम्मान में 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के विशेषांक के प्रकाशन का निर्णय उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

शुकदेव प्रसाद जी की उपलब्धियों के विषय में सम्पूर्ण विज्ञान लेखक जगत भली-भांति परिचित है। उनके साथ मेरे दो लघु संस्मरण हैं जिन्हें मैं साझा करना चाहता हूँ। मुझे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में वर्ष 1976-78 सत्र में प्राणिविज्ञान में एम एससी करने का अवसर मिला। वहीं से डी.फिल (इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा आज भी डॉक्टरेट की उपाधि D Phil ही दी जाती है, कुछ उसे Ph D u

मानते हुए डिप्लोमा समझने लगते हैं, और इस उहापोह से बचने के लिए इस उपाधि को ग्रहण किए कुछ लोग Ph D लिखते हैं) करने के दौरान मुझसे दो वर्ष सीनियर बैच के वरिष्ठ रिसर्च स्कॉलर श्री विजय कुमार श्रीवास्तव जी के सम्पर्क में आना हुआ। उन्होंने रिसर्च के दौरान ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञान लेखन आरंभ कर दिया था। शुकदेव प्रसाद जी उनके बैच के मित्र होने के नाते उनसे अक्सर मिलने आते थे। हालांकि, शुकदेव प्रसाद जी ने वनस्पति शास्त्र में M.Sc किया था। वर्ष 1980 या '81 के दौरान शुकदेव प्रसाद जी 'पर्यावरण' पर एक मासिक पत्रिका के प्रकाशन की शुरुआत की थी, जिसके संबंध में अपने मित्र से मिलने जूलॉजी डिपार्टमेंट में प्रायः आया करते थे। साइंस फैकल्टी में हर रोज उन्हें साइकिल पर आते-जाते देखा जा सकता था। श्रीवास्तव सर ने बताया था कि 'यह व्यक्ति किसी भी जॉब, कंपटीशन के लिए बिल्कुल प्रयास नहीं कर रहा, विज्ञान लेखन ही अपना उद्देश्य बना लिए हैं'। सुनकर अजीब लगता था कि क्या कोई व्यक्ति मात्र विज्ञान लेखन के बल पर जीवन यापन करने का निर्णय ले सकता है? उनके निधन पर आदरणीय श्री देवेन्द्र मेवाड़ी जी ने उन्हें सच्चे 'मसिजीवी' विज्ञान लेखक की संज्ञा देते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की थी, उनके द्वारा दी गई वह संज्ञा अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है।

वर्ष 1988 में नई दिल्ली स्थित भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान परिषद यानी आई.सी.एम.आर. में मेरा चयन हुआ और गृह पत्रिका 'आई.सी.एम.आर. पत्रिका' के सम्पादन कार्य की जिम्मेदारी दी गई। मेरे कार्यालय में श्री रणबीर सिंह जी जन सम्पर्क अधिकारी के रूप में कार्यरत थे, जो स्वयं विज्ञान लेखन से भी जुड़े थे। वर्ष 1989 में संगम क्षेत्र में आयोजित विज्ञान प्रदर्शनी में आई.सी.एम. आर द्वारा मेरी और रणबीर सिंह जी की ड्यूटी लगाई गई थी। उस समय तक शुकदेव प्रसाद जी भारत में एक प्रतिष्ठित विज्ञान लेखक के रूप में स्थापित हो चुके थे। रणबीर सिंह जी ने शुकदेव प्रसाद जी से भेंट करने की इच्छा व्यक्त की। हम दोनों बिना पूर्व सूचना के इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सामने एलनगंज स्थित उनके आवास पर पहुँच गए। विज्ञान लेखक के रूप में रणबीर सिंह जी से वे परिचित थे। आई.सी.एम.आर. ज्वाइन करने के बाद हम भी उनके लिए अपरिचित नहीं थे। दोनों को स्वागतभाव के साथ अपने कमरे में ले गए। यह क्या, उनका एक कमरे का आवास चारों ओर पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, मैग्जीनों, पेपर्स की कटिंग्स से अटा पड़ा था। यहाँ तक कि पलंग के नीचे, आसपास, संदूक की सतह, कोई जगह खाली नहीं थी। हम दोनों को चाय पिलाने बाहर दुकान पर ले गए, उनके साथ अनौपचारिक भेंट के दौरान विभिन्न विषयों पर चर्चा के उपरान्त एक सुखद अनुभूति के साथ विदा लिए। जिन लोगों ने अपनी आँखों से देखा होगा, उनको छोड़कर कोई विश्वास नहीं कर सकता कि शुकदेव प्रसाद जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन विज्ञान लेखन को

डॉ. कृष्णानन्द पाण्डेय ने प्राणी विज्ञान में स्नातकोत्तर तथा 'मछलियों की एनाटॉमी' विषय पर शोध व डॉक्टरेट (डी.फिल.) की उपाधि प्राप्त की। भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय द्वारा प्रायोजित 'मैन ऐंड बायोस्फीयर' शोध परियोजना में वरिष्ठ रिसर्च फेलो के रूप में कार्य किया। डॉ. पाण्डेय ने आईसीएमआर में सेवाएं तथा आईसीएम आर पत्रिका का संपादन किया। 'मलेरिया अनुसन्धान से रोग समाधान', 'डेंगी एवं चिकुनगुनिया : रोग प्रसार एवं रोकथाम'; 'प्रदूषण, जीवन शैली एवं प्रजनन स्वास्थ्य'; 'व्यावसायिक रोग और निवारण' तथा 'आई जे एम आर-गांधी और स्वास्थ्य' जैसी पुस्तकों का सम्पादन तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं 250 से ज्यादा लोकप्रिय लेख प्रकाशित हैं। विज्ञान पुरस्कार, नई दिल्ली स्थित 'केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद' द्वारा 'प्रशस्ति पत्र', 'राष्ट्रीय हिन्दी सेवी सहस्राब्दी सम्मान' तथा 'शताब्दी सम्मान' से सम्मानित।

समर्पित कर दिया था। बेतरतीब तरीके से फैली पठन सामग्रियों के बीच रहना, खाना, सोना आज के युग में शायद ही कोई कर सकता है।

शुकदेव प्रसाद जी से मेरी सीधी मुलाकात वर्ष 1991 के आस-पास फैज़ाबाद के डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय जी द्वारा आयोजित एक विज्ञान कथा सम्मेलन में हुई थी। उसमें डॉ. शिव गोपाल मिश्र सर, 'विज्ञान' के तत्कालीन सम्पादक श्री प्रेमचंद्र श्रीवास्तव जी के अलावा डॉ. अरविन्द मिश्र, डॉ. दिनेश मणि, डॉ. देवव्रत द्विवेदी जैसे लेखकगण इलाहाबाद से गए थे। हालांकि, वह सम्मेलन विज्ञान कथा लेखक संघ का था, और वह मेरी विधा नहीं थी, परन्तु मेरे सहपाठी डॉ.अरविन्द मिश्र जी के इच्छानुरूप मुझे भी आमंत्रित किया गया था। उस कार्यक्रम में पूरा एक दिन शुकदेव प्रसाद जी के सम्पर्क में रहने का अवसर मिला था। उनके विचारों से बहुत ही प्रभावित हुआ था। उनके स्वाभिमान की एक मिशाल साझा करना चाहता हूं। मैंने सहज भाव में पूछा था, 'सर आपने सर्विस करने का कभी विचार नहीं किया?' उन्होंने कहा 'पाण्डेय, बात ऐसी है कि आज जितनी सैलरी मिलती है न, उससे मेरा केवल एक शौक ही पूरा होगा'। उन्हें अपने कार्य, अपनी योग्यता पर इस क़दर का आत्मविश्वास था, जो एक असाधारण व्यक्ति में ही देखा जा सकता है। एक बार उन्होंने 'स्वास्थ्य विज्ञान में हिन्दी पुस्तकों के लिए आई.सी.एम.आर. पुरस्कार' हेतु अपनी एक पुस्तक प्रेषित की थी। उस कार्यक्रम से जुड़े होने के नाते शुकदेव प्रसाद जी ने कई बार मुझे फोन कर यह जानना चाहा था कि मीटिंग कब हो रही है? हालाँकि, संयोगवश निर्णायक मण्डल द्वारा उनकी पुस्तक का चयन नहीं हो सका था। शुकदेव प्रसाद जी ने अपने 5000 से अधिक विज्ञान लेखों और वैज्ञानिक विषयों पर 150 से अधिक पुस्तकों के प्रकाशन और संपादन के माध्यम से विज्ञान लेखन जगत में एक कीर्तिमान स्थापित किया है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के लगभग 100 पुरस्कारों से पुरस्कृत होना उनके व्यक्तित्व और योगदानों की उत्कृष्टता को प्रमाणित करता है।

इस प्रकार, शुकदेव प्रसाद सर एक महान, प्रतिष्ठित विज्ञान लेखक थे। पत्र-पत्रिकाओं, मैग्जीनों, पुस्तकों, के माध्यम से विज्ञान के गूढ़ विषयों पर जानकारी जनसाधारण तक संप्रेषित करने में उनके अद्वितीय योगदान विज्ञान लेखन जगत के लिए सर्वथा अविस्मरणीय रहेंगे। उनकी कृतियां भावी पीढ़ी के विज्ञान संचारकों के लिए सदैव अनुकरणीय रहेंगी।

knpandey@gmail.com

शुकदेव जी को समृद्धि के तलछट को पीने से नफ़रत है। वे तो नित नये सृजन के रस का छककर पान करना चाहते हैं। एक सुधी सर्जक को 'सृजन-आनन्द' नसीब होता है। 'विनय पत्रिका' में गोस्वामी तुलसीदास कहते भी हैं 'जो मोहिं राम लागते मीठे। तौ नवरस षटरस रस अनरस है जो सब सीठे।' शुकदेव जी कहते भी हैं 'लेखन में यदि किताबों ही किताबों की गंध है तो ऊब पैदा होती है। यदि अपना कुछ नहीं है तो कागज रंगने का कोई मक़सद नहीं है। रचनाधर्मिता कभी-कभी खिलने वाला फूल है। इसके अभाव में सर्जक को अड़चन होगी, अन्य को नहीं।'

- डॉ. दुर्गादत्त पांडेय,

मुझे उनकी जो खास बात देखने को मिली वह थी उनकी अपने शर्तों और पसंदों पर कार्य करने की इच्छा, लगा क्योंकि वह किसी की परवाह नहीं करते थे। वह अपने मर्जी के मालिक थे और किसी तरह का इंटरफेरेंस या रोक-टोक या समय सीमा से बांधना या अन्य क्रिया कलाप (जो उन्हें किसी बॉउंड्री में बाँध रहा हो) वह बिल्कुल पसंद नहीं करते थे। यही नहीं अगर आयोजनों में उन्हें आमंत्रित कर माइक हाथ में दे दिया गया तो वह लगातार बोल सकने की क्षमता रखते थे और उस विशिष्ट विषय पर ही (न की अन्य विषय से हटकर) बोलते थे। वह विज्ञान के किसी विषय पर कही भी गलत किसी अन्य के बोलने पर वह तुरंत बेबाक हो कर सुधारने को कहते थे क्योंकि उन्हें समय, वर्ष, तथ्य, क्रम, विवरण आदि सभी स्मरण रहता था। वह चुप होकर सुनने वालों में से नही थे। मेरे विचार से साहित्य में तो ऐसे अनेक नाम हैं जिनकी यादें प्रायः आती ही रहती है मगर विज्ञान साहित्य मे बड़े-छोटे कई विज्ञान लेखकों के बीच डॉ. गुणाकर मुळे के बाद श्री शुकदेव प्रसादजी एक ऐसा बड़ा नाम थे जिसे अगर स्वयं 'विज्ञान ग्रन्थ' कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। मृत्यु एक ऐसा सच है जिसे कोई भी झुठला नहीं सकता मगर एक सरल, सौम्य, सहायक, ज्ञानी मगर एकदम खुले विचारों वाले बेबाक श्री शुकदेव प्रसाद का यूं चला जाना सम्पूर्ण भारतीय विज्ञान जगत के लिए आघात देने वाला है।

- संजय वर्मा

लखनऊ में जन्म। वैज्ञानिक दृष्टि के साथ कविता, पत्रकारिता, अनुवाद, संपादन और इतिहास-लेखन में एक साथ सक्रिय। पृथक-पृथक विधाओं में लगभग पचास कृतियों का सृजन और प्रकाशन। 'दुनिया इन दिनों' मासिक पत्रिका के संस्थापक संपादक। रूस, ब्राजील और स्वीडन आदि देशों की कविताओं का अनुवाद जिसमें येगोर इसायेव, कायसिन कुलियेव, ओसिप मंदेलश्ताम आदि के अनुवाद चर्चित। 'सोमदत्त पुरस्कार' , माधवराव सप्रे पुरस्कार, वागेश्वरी अलंकरण, जिपलेप, सृजन गाथा, केशव पंडित, लाल बलदेव सिंह, प्रमोद वर्मा सम्मान, केदार स्मृति सम्मान, शिवकुमार मिश्र सम्मान, शमशेर सम्मान और 'पूश्किन सम्मान' से सम्मानित।

सोख़्ते पर एक बूँद टपकी स्याही है ज़िंदगी

सुधीर सक्सेना

ज़्यादा दिनों पहले की बात नहीं है
यही साल अप्रैल के महीने में
जैसे एक कलमकार मिलता है
दूसरे कलमकार से
मिले थे हम रवीन्द्र भवन में
खचाखच भरे सभागार में
बगलगीर हो कहा था तुमने
'मैं शुकदेव प्रसाद'
'जानता हूँ आपको मुद्दत से,
शब्दों की मार्फ़त बखूबी,'- कहा था मैंने
'जानता हूँ मैं भी आपको'- आवाज़ थी भीगी
आत्मीयता में डूबी
बतियाये थे हम
कहा था तुमने
'सही कहा आपने
कि कुछ भी नहीं है विज्ञान बाह्य
एक लय में है सारी कायनात'
और यह भी
कि ऊर्जा और रसायनों का खेल है ज़िंदगी'

लेखन में जितने तरतीब
उतने ही बेतरतीब ज़िंदगी में
छूते हुए लगातार लापरवाही की हदें
अपनी सुफ़ैद झक्क बेतरतीब दाढ़ी में
ऊँगलियाँ फँसा कहा था तुमने
'अंतर्निहित ख़तरों के बावजूद
विज्ञान ही बचायेगा धरती को'

विज्ञान लेखन तुम्हारा शगल नहीं, मिशन
'विज्ञान भारतीय', 'विज्ञान वैचारिकी' और
'पर्यावरण दर्शन' तथा शताधिक पुस्तकों का
लेखन-संपादन
थके नहीं, न ऊबे
करते रहे आजीवन विज्ञान-लोक में भ्रमण

सलवटों से भरी तुम्हारी कमीज़ पर
कितने ही तमगे
घर की दीवार पर कितनी ही प्रशस्तियाँ
अलमारियों में कितने ही शील्डें-मोमेन्टोज़
तुम्हारे न होने पर प्रश्वास छोड़ता है प्रयागराज
तुम पर, तुम्हारी कलम और तुम्हारे मिशन पर
रहा दोस्तों को नाज़
सोख़्ते पर एक बूंद टपकी स्याही है ज़िंदगी
बाकि गुज़रती है रूह
अमुक तारीख़ से अमुक तारीख़ तक
धरती नाम के ग्रह से

विज्ञान है तो सुकर है जीवन
विज्ञान है तो बुझेगा नहीं सत्य का दीया
याद करो!
बापू ने कहा था - 'सत्य ही ईश्वर है'
हम सब करते हैं सत्य की आराधना
ग्रंथागारों, दराजों, रीडिंग रूमों में
फड़फड़ाते हैं तुम्हारी कृतियों के पृष्ठ

जाते-जाते तुम बुदबुदाते हो शुकदेव प्रसाद!
दिशाओं में गूंजता है वही स्वर :
'सत्यं वद! धर्मं चर!!

sudhirsaxena54@gmail.com

मेरे मित्र डॉ. शुकदेव प्रसाद पिछले तीस-चालीस वर्षों से ऐसे सत्यों की खोज में लगे हुए हैं जो विज्ञान के दायरे में आते हैं। शुकदेव प्रसाद ने सत्य के विज्ञान को ठीक वैसे ही प्रचारित किया जैसे धर्म मर्मज्ञ ईश्वर के प्रति भक्त के सहज विश्वास को प्रचारित प्रसारित करता है। उनका मानना है कि विज्ञान रहस्यों और तथाकथित चमत्कारों का सत्य चिंतन है जो साक्ष्यों के विश्लेषण पर केंद्रित है। विज्ञान सत्य का विश्लेषण है ऐसे सत्य का जो हमारे सामने है और नहीं भी है। तीन सौ के लगभग विज्ञान के सत्यों का उद्घाटन करने वाली पुस्तकों को लिखने के बाद शुकदेव प्रसाद ने विज्ञान के प्रति अपने विश्वास और ज्ञान दोनों को साबित कर दिया है।

- अजामिल

लिखकर अपनी रोटी अर्जित करने वाले रचनाकारों में सहज ही सर्वश्री नरेश मेहता, शैलेश मटियानी और मुंशी लक्ष्मीकांत वर्मा की याद आती है। इलाहाबादी तेवर लिए राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन योद्धा लेखकों ने अपनी सर्वथा अलग पहचान बनायी है। कवि अजामिल की पंक्तियाँ बरबस ही मन में कौंध जाती हैं।

मैं एक ऐसी कविता लिखना चाहता हूँ
जिसे रोटी में तब्दील कर सकूं।

निःसंकोच कहा जा सकता है कि शुकदेव प्रसाद जी इसी लेखकीय प्रतिबद्धता के समर्पित लेखक हैं, जिन्होंने क़लम से बिना कोई समझौता किये अपने लेखन के बलबूते, तनी हुई रीढ़ रखकर स्वाभिमान के साथ अपने लेखन और ज़िदगी का सफ़र तय किया है। एक मज़दूर लेखक का चेहरा है भाई शुकदेव प्रसाद का। ज्ञान, विज्ञान को आम आदमी तक आसान जुबान में पहुंचाने वाले मसिजीवी, इस सर्जक की अपनी अलग ही ठसक और ठनक है।

- यश मालवीय

पिछले दशक में जिन विज्ञान लेखिकाओं ने तेज़ी से अपनी पहचान बनाई हैं उनमें शुचि मिश्रा का नाम ज़रूरी तौर पर शुमार होता है। उनके कुछ विज्ञान लेख और कविताएँ देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं जिनमें साक्षात्कार, आकंठ, युग तेवर, अट्टहास, बहुमत आदि शामिल हैं। आपने स्टीफन हॉकिंग, जे.सी.बोस, सत्येन्द्र नाथ बोस, और आइंस्टीन पर लेखकीय कार्य किया है। शुचि मिश्रा ने विश्वव्यापी कार्यक्रम 'विश्वरंग' सहित अनेक कार्यक्रम में सक्रिय भागीदारी की। विज्ञान कार्यशालाओं में शिरकत। आपको 'पृथ्वी झुकी है' कविता पर सिंगापुर का चर्चित 'कविताई' पुरस्कार प्राप्त है।

शुचि मिश्रा

शुकदेव प्रसाद से मिलना

इलाहाबाद का विज्ञान
यानी शुकदेव प्रसाद
छोटा बघाड़ा में स्थित मकान
वृक्षों से घिरा ज्यों अमराई के बीच प्रासाद
मेरे मन में जब-तब गहराता
एक गहरा अवसाद
कि जौनपुर से इलाहाबाद की दूरी
मात्र सौ किलोमीटर
दो घंटे का सफ़र
जो उनके रहते पूरा न हुआ
टूट न सका उनकी ठसक का वलय
रह गई मिलने की आस अधूरी

शुकदेव प्रसाद से मिलना
यानि सवा सौ किताबों से गुज़रना
माला भी एक सौ आठ में पूरी हो जाती
कितने मोती थे उनके हाथ में, मुट्ठी में
एक-एक कर देते गए पाठकों को

लिखा सिलसिलेवार विज्ञान का इतिहास
प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल की विज्ञान यात्रा
त्रुटिविहीन ऐसी इबारतें
सजग रहते अल्पविराम-पूर्णविराम-मात्रा
जगाए और जिलाए रखते भीतर स्वाभिमान की लौ
जो बन जाती यदा-कदा चिंगारी

समकालीनों को लेते आड़े हाथ
बजता डंका हिंदी विज्ञान लेखन जगत में

करते संवाद : बतियाते फोन पर घंटों
अपने समकालीन और युवतम लेखकों से
उन्हें लताड़ते कभी ; देते सीख

इलाहाबाद का इलाका
छोटा बघाड़ा
वृक्ष से गिरा एक मकान
जिसे घर बनाने की
कोशिश में लगे रहे ताउम्र
जानते थे बखूबी कि घर बनता है परिवार से
और परिवार ?
सारा संसार था आपका

वृक्षों से घिरे इस मकान में एक कमरा
जिसमें घना हुआ किताबों का जंगल
बस उसी से घिरे रहते शुकदेव प्रसाद

इस जंगल में पहुँचना था मुझे
हिंदी के अप्रतिम विज्ञान लेखक से मिलने
अपने शहर जौनपुर को पार कर

जौनपुर से इलाहाबाद की दूरी
मात्र सौ किलोमीटर
दो घंटे का सफ़र
जो पूरा न हो सका उनके रहते

मुझे पहुँचना है शुकदेव प्रसाद से मिलने
सशरीर विदा हुए वे तेईस मई को
शुकदेव प्रसाद अब
एक इतिहास है, एक विचार है

अब पहुँचना है उन तक
जहां पहुँचे वे तूर पर
मुझे पहुँचना है
उनकी सवा सौ कृतियों से गुज़र कर।

shuchimishra205633@gmail.com

गुणाकर मुळे का शुकदेव प्रसाद के नाम पत्र

GUNAKAR MULEY
Author & Journalist

सी-210 पांडव नगर
पटपड़गंज रोड़ दिल्ली-110092
दिनांक : 3 फरवरी-10-77

भाई शुकदेव जी,

इधर 'विज्ञान भारती' के कुछ अंक मिले, प्रकाशित सूची मिली। आप बड़ा काम कर रहे हैं; देखकर सुख मिलता है।

'विज्ञान भारती' के दिसम्बर-जनवरी (82) के अंक नहीं मिले। 'विज्ञान वैचारिकी' के भी इधर के दो-तीन अंक देखने की इच्छा है।

'पर्यावरण दर्शन' का प्रवेशांक निकल गया?

'विज्ञान भारती' के उस अंक की प्रति चाहिए जिसमें 'संयुक्त राष्ट्र जलदशक' के बारे में सामग्री है।

सिर्फ 'चाहिए ही नहीं,' 'भेजने' की भी इच्छा है। लेकिन स्थिति यह है कि मैं भी 'स्वच्छंद' लेखक हूँ लेखकों के लिए आपकी सूचनाओं में कहीं पढ़ा है कि जनवरी' 82 से आप 'पारिश्रमिक' की व्यवस्था कर सकेंगे। यदि ऐसा हो सके, तो मैं चीज़ें भेज सकता हूँ, नियमित रूप से कोई स्तंभ भी लिख सकता हूँ।

लिखेंगे।

अध्ययन और लेखन की प्रेरणा के मेरे स्रोत भी इलाहाबाद में ही हैं। 1950 से 1961 तक मैं इलाहाबाद रहा और मेरी सारी पढ़ाई वहीं हुई। बड़ी याद आती है इलाहाबाद की।

आशा है आप स्वस्थ-प्रसन्न हैं।

शुभेच्छु
(गुणाकर मुळे)

किम् आश्चर्यम्

धुन का पक्का विक्रमार्क पुनः उसी वृक्ष के पास गया और वृक्ष पर लटके शव को उतारकर अपने कंधे पर डाल लिया और चल पड़ा अपने गंतव्य की ओर। तब शव के अंदर विद्यमान बेताल ने कहा – 'विक्रम, मुझे तुम्हारे उद्यम को देखकर आश्चर्य होता है। सावन-भादों की इन काली-कजरारी रातों में दिल को दहला देने वाली तड़ित गर्जनाओं, बाढ़ से उफनती नदियों को देखकर क्या तुम्हें डर नहीं लगता? काले डरावने मेघ और यह भयावह श्मशान भी तुम्हारे साहस को नहीं डिगा सके? मैं तुम्हारे साहस की प्रशंसा करता हूँ। तुम हठी भी हो विक्रम। मुझे लगता है, निश्चिय ही तुम जिस कठिन साधना में सन्नद्ध हो, उसका उद्देश्य उतना ही गंभीर भी होगा। कहीं तुम किसी तांत्रिक-मांत्रिक या किसी कापालिक के चक्कर में तो नहीं पड़ गए। मैं तुम्हें सावधान करता हूँ, इस उपक्रम में तुम अपनी जान भी गंवा सकते हो। विगत में तुमने जितने प्रयास किए, असफलता ही तुम्हारे हाथ लगी। लेनिक इसका यह अर्थ नहीं कि मैं तुम्हें हताश कर रहा हूँ। तुम्हारे इस उद्यम की प्रेरणा के मूल में जो भी है, उसकी इंगिति का अर्थबोध तुम्हें है भी नहीं, मैं नहीं जानता। कारण यह कि जीवन में बहुत सी ऐसी घटनाएं घटती हैं जो सदैव रहस्य के आवरण में आवृत्त रहती हैं और लोग उसके अनावरण के लिए मानसिक व्यायाम करते रहते हैं। उदाहरण के लिए मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ क्योंकि प्राचीन कहानियां तुमने बहुत सी सुनी और प्रश्नों का समुचित और विवेक सम्मत निराकरण भी किया। कहानी सुनने से तुम्हारी थकान भी कुछ कम होगी।' ऐसा कहकर बेताल यों कहानी सुनाने लगा।

राजन, मैं तुम्हें काल यंत्र की गति और शक्ति प्रदान करता हूँ और ले चलता हूँ काल प्रवाह के उस मोड़ पर जहां दूसरी सहस्राब्दि अवसान की ओर अग्रसर है और नई सहस्राब्दि का नव विहान होने वाला है, जहां न कोई सम्राट है और न ही सम्राज्ञी, राज-पाट भी नहीं। न आज के गणराज्य, सर्वत्र लोकतंत्र की लहर है। स्वातंत्र्य ही स्वातंत्र्य। बीसवीं शती का अवसान काल वैज्ञानिक परिवर्तनों और चामत्कारिक विचित्रताओं के दौर से गुजर रहा है। तुम देख रहे हो, एक तरफ कंप्यूटर शासित समाज की तैयारियों में लोग सचेष्ट हैं तो वहीं यह भी आशंका है कि सारे कंप्यूटर कहीं जाम न हो जाए। इससे निपटने की जुगतें की जा रही हैं। इंसानों की नकली फौजें खड़ी करने के उपक्रम किए जा रहे हैं। कलमी भेड़ डाली का साफल्य उसे और त्वरा प्रदान कर रहा है। इस तरह मनु संतानें ईश्वरत्स की भूमिका को चुनौती देती प्रतीत होती है। यह देखना दिलचस्प होगा कि आखिर इसमें इंसान की हार होती है कि जीत? लेकिन मैं तुम्हें इन वैचित्र्यों में उलझाना नहीं चाहता क्योंकि इस चकाचौंध से तुम विभ्रम में पड़ जाओगे। मुझे यह भी भय है कि कहीं तुम अपनी सुध-बुध न खो बैठो और लक्ष्यविहीन तथा पथभ्रष्ट हो जाओ। तुम्हारे उद्यम की मैं सराहना करता हूँ। मैं भी चाहता हूँ कि तुम्हारा उद्यम निःश्रेयस न हो। अब मैं तुम्हें भारत के उस भावी नगर में ले चलता हूँ जहां पर घटी एक त्रासदी को लेकर मैं उलझन में हूँ। उसी का तुम्हें निदान करना है। यह जो नगर दिखाई पड़ रहा है, उसका नाम है, 'देव स्थानम्।' पुण्य तोया गंगा के तट पर अवस्थित इस नगर का नाम तो युक्ति-युक्त है लेकिन अब वह मात्र कंक्रीट का जंगल भर रह गया है। हवा विषाक्त, माहौल दमघोंटू फिर

भी रहने वालों को रास ही आ रहा है नगर। बढ़ती जनसंख्या का दबाव जो है। बहरहाल, जिस भावी भारत के तुम दर्शन कर रहे हो, उसमें मानव की उदात्त भावनाएं और नैसर्गिक जीवन यापन की कामनाएं मृत हो चुकी हैं। आम भारतीय की मात्र इतनी ही इच्छाएं हैं – रहने को एक घर, एख वाहन, टी. वी., फ्रिज और टेलीफोन। हमारा कथा पात्र शीलभद्र था तो तुम्हारी तरह उद्यमी युवक और अध्यवसायी भी पर वह भी इन आम प्रलोभनों से विरक्त न था। कालक्रम में अपने परिश्रम से वह एक उच्च परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और एक अधिकारी बन बैठा। उसकी नई जीविका का कार्यस्थल यही नगर था जहां कुछ दिनों तक वह किराए के भवन में रहता था। उसकी भी दिली ख्वाहिश एक भवन की थी जो मन में धीरे-धीरे परवान चढ़ रही थी। इस सपने को पूरा करने के लिए उसने कई उपक्रम भी किए। थोड़ी-थोड़ी बचत, खर्चों में किफायत, ओवर टाइम आदि। इस बीच उसकी शादी भी हो चुकी थी। एक सुशील जीवन संगिनी भी उसे मिल गई। क्रमशः दो संतानें भी हुई। उसके सपनों की हमसफर थी उसकी जीवन संगिनी। इस दिशा में उसके भी प्रयासों की हमें सराहना करनी होगी। बहरहाल इस नगर में एक छोटा सा भूखंड प्राप्त करने में वह सफल हो गया और एक दिन उसका भवन भी बन गया। उसकी आखिरी ख्वाहिश थी एक बाइक भी, वह भी समय से पूरी हो गई। अब वह आम हिंदुस्तानी की तरह अपने जीवन से पूरी तरह संतुष्ट था। कोई सपना नहीं, कोई ऊंची उड़ान नहीं। दफ्तर से घर, घर से दफ्तर, कभी कभार आस-पास कहीं बीवी बच्चों के साथ सैर सपाटा। इसी दायरे में सीमित थी उसकी जिंदगी।

विक्रमार्क ने उसकी शंका का यों समाधान किया, 'इसमें आश्चर्य ही क्या है? यह तो दैनिक जीवन की एक सामान्य सी घटना है। तुम्हारे कालयंत्र ने न मात्र मेरी काल यात्रा ही सम्पन्न करायी है अपितु इसने मुझे क्षण मात्र में ही वैज्ञनिक संस्पर्श भी दिए हैं, नाना वैचित्र्यों के लोक में सैर करके मैं कुछ-कुछ इसका आभास कर पा रहा हूँ।

तभी एक दिन। दफ्तर जाने के लिए वह तैयार हुआ। घर के बरामदे में खड़ी गाड़ी रोज की तरह स्टार्ट कर ही रहा था कि एकाएक छत भरभरा कर गिर पड़ी। आवाज सुनकर पत्नी-बच्चे, पड़ोसी भागे-भागे आए। हाय तौबा मच गई। किसी तरह उसे मलबे से बाहर निकाला गया, आनन-फानन में अस्पताल। लेकिन तब तक उसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे।

छत का अचानक गिर पड़ना अजीब वाकया था। स्थानीय पुलिस ने नाना कोणों से तफ्तीश की, कोई सिरा पकड़ में न आया। कहीं भी किसी विध्वसंक सामग्री का एक चूरा भी नहीं मिला कि साजिशन किसी ने फेंक दिया हो। पड़ोसियों से उसके मधुर संबंध थे। उसके पत्नी, बच्चे तो इस नाते बच गए कि वे भवन के पिछले हिस्से में थे। वास्तुविदों ने मलबे की जांच की कि कहीं बालू-सीमेंट में कांट्रेक्टर ने घालमोल तो नहीं किया। अनुपात समुचित ही पाए गए जो उस समय भवन निर्माण सामग्रियों में प्रयुक्त किए जाते थे। कारण कुछ भी समझ न आने पर पुलिस ने फाइल बंद कर दी। लेकिन उसके परिजन और मित्र आज भी इस अजीबोगरीब घटना से हैरान-परेशान हैं। मुझे तो लगता है कि वह भवन ही शापग्रस्त था तभी तो उसमे ऐसा अपशकुन हुआ। क्या तुम इस पर रोशनी डाल सकते हो?

यह कहानी सुना चुकने के बाद बेताल ने उसे सावधान करते हुए कहा, 'विक्रम, स्मरण रहे मेरी इन शंकाओं का समाधान जानते हुए भी यदि तुमने उत्तर नहीं दिया तो तुम्हारे सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे।'

विक्रमार्क ने उसकी शंका का यों समाधान किया, 'इसमें आश्चर्य ही क्या है? यह तो दैनिक जीवन की एक सामान्य सी घटना है। तुम्हारे कालयंत्र ने न मात्र मेरी काल यात्रा ही सम्पन्न करायी है अपितु इसने मुझे क्षण मात्र में ही वैज्ञानिक संस्पर्श भी दिए हैं, नाना वैचित्र्यों के लोक में सैर करके मैं कुछ-कुछ इसका आभास कर पा रहा हूँ। अब मैं इसकी विवेचना करता हूँ। कथा पात्र शीलभद्र रोज अपने वाहन को गैलेरी में स्टार्ट करके घर से बाहर निकलता था। उसकी बाइक की कर्ण कटु ध्वनि गैलरी की छत से टकरा कर फर्श पर लौट आती थी फिर उसका परावर्तन होता था। ध्वनि तरंगों के परावर्तन के लिए परावर्तन तल को अधिक चिकना होने की आवश्यकता नहीं होती। केवल परावर्तन तल का क्षेत्रफल ध्वनि तरंगों की लंबाई की अपेक्षा अधिक होना चाहिए।

दोनों परावर्तन तलों से बारंबार परावर्तनों के कारण उत्पन्न प्रतिध्वनियां गड़गड़ाहट उत्पन्न करती थीं जिससे वातावरण और भी कर्णकटु हो जाता था। लेकिन शीलभद्र को जैसे यह सब कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था। नए-नए वाहन का आनंद उसे अजीब सी अनुभूति देता था और वह एक नए लोक में पहुंच जाता था। इसी कारण वह घर में ही गाड़ी चालू करने में जरा भी हिचकिचाता न था। उस दिन उसने जब गाड़ी स्टार्ट की तो उससे उत्पन्न ध्वनि की आवृत्ति छत की स्वाभाविक आवृत्ति के बराबर हो गई। फलस्वरूप छत में अनुनाद उत्पन्न हो गया और वह कंपित होकर भरभरा कर गिर गयी। बस इतना ही रहस्य है इस त्रासदी का।'

विक्रम का मौन भंग होते ही बेताल शव सहित आकाशगामी हो गया और फिर जा लटका उसी वृक्ष की शाखा से और विक्रम उसे अपने कंधे पर लटकाने के लिए पुनः उपक्रम करने लगा।

❑❑❑

रोबो मेरा दोस्त

दोस्तो, तुमसे तो कभी-कभी मेरी मुलाकात हो ही जाती है और न सही तो रेडियो पर ही। जैसा कि आज हम तुम मुखातिब हैं। लेकिन आज मैं अपने एक ऐसे दोस्त से तुम्हें मिलाऊँगा, जिसके बारे में जानकर तुम्हें आश्चर्य होगा, जैसा कि मुझे भी हुआ था। दोस्तों, रोबो से मेरी मुलाकात संयोगवश ही हुई थी। रोबो, मेरा दोस्त, एक ही बार मिला था। फिर भी वह मुलाकात अविस्मरणीय थी।

यह बहुत पहले की बात है। मैं एक रोज रात में देर तक जागता रहा। जैसे ही सोने की तैयारी करने लगा, मैंने एक सुरीली सी मधुर धुन सुनी। सच मानों मुझसे रहा न गया। मैंने खिड़की खोलकर बाहर झांका। मेरी ही तरह का एक लड़का मेरी ओर अपलक निहार रहा था। यही रोबो था। मुझे अपनी ओर देखते ही उसने हाथ से आने का इशारा किया। मेरे ऊपर तो उसके संगीत का जादू हो चुका था। मैं अपने को रोक न सका। क्षण भर में मैंने अपने आपको बगीचे में पाया। रोबो ने मुझसे कहा – 'आओ, आज तुम्हें दूर देश की सैर करायें।' मैंने पूछा – 'किस देश की?'

रोबो बोला – 'जिसने ग्रह-नक्षत्रों की बात तुम अपनी किताबों में पढ़ते हो।'

मैं शायद उसे मना कर देता। पर रोबो की जादुई बातें और सैर-सपाटे का आकर्षण मुझ पर ऐसा हावी हुआ कि मैं मना न कर सका। मुझे मेरे बगीचे में खड़े एक तश्तरी नुमा यान में रोबो ने बैठाया और देखते-देखते मैं उड़ चला दूर बहुत दूर। यान की कांच की दीवार से मैंने साफ-साफ देखा, मैं जैसे सितारों की बस्ती में उड़ानें भर रहा हूँ, उनके पास आता जा रहा हूँ, पास और पास। तभी उसका यान धरती जैसी किसी जगह पर रूका। मुझे उसने अपने यान से बाहर उतारा और गाइड की तरह पीछे-पीछे आने को कहा। फिर मैं और वह ऐसी जगह में थे, मानों वह कोई फैक्ट्री हो। उसने मुझसे पूछा – कुछ खाओगे?

थोड़ी देर में प्लेट में हरे-हरे लड्डू हाजिर थे। खाने में भी मजेदार। मैंने पूछा – यह कौन सी चीज के बने है? रोबो हंसा मेरी नादानी पर। 'अरे, यह हैं काई के लड्डू। शैवालों के लड्डू।'

दोस्तों, मैंने तो अपनी किताबों में पढ़ा था कि शैवाल भी खाई जाती है, धरती पर ही कहीं-कहीं लोग खाते हैं। मगर आज तो शैवाल के व्यंजन मेरे सामने थे। पानी की जगह शैवालों का हरा-हरा जूस था। मैंने ईर्ष्यात् कहा – 'तुम लोगों के बड़े मौज हैं मेरे दोस्त।' सहज ही मेरे मुंह से दोस्त संबोधन सुनकर रोबो ने मेरी ओर अपना दोस्ती का हाथ बढ़ाया। मैंने उससे हाथ मिलाया। मगर यह क्या? मेरे उस प्यारे भोले से दोस्त का हाथ, मेरी तरह मुलायम न था, वह तो लोहे सरीखा सख्त था। मैंने पूछा भी – क्या यह नकली हाथ हैं?

रोबो ने मायूसी से कहा, 'हाथ ही नहीं दोस्त मैं, पूरा का पूरा नकली हूँ।' तब तक उसने अपने हाथों से अपना सीना खोल दिया। अंदर मशीनी पुर्जे ही पुर्जे। मुझे बड़ी हैरत हुई।

उसने ही बताया – 'हम हैं मशीनी मानव। यानी रोबोट। प्यार से तुम मुझे रोबो भी कह सकते हो। मैं या मेरी तरह के रोबोट इन्हीं फैक्ट्रियों में बनाये जाते हैं और मेरी आत्मा यानी तमाम सूचनाएं इन पुर्जों में कोड के रूप में डाल दी जाती है और वैज्ञानिक गण मनचाहा काम हमसे लेते हैं। हम खेती करते हैं। बच्चों को पाठ सिखाते हैं, गणनाएं करते हैं। पूछो हम क्या नहीं करते, यहाँ तक कि जासूसी भी।'

'तुम्हारी धरती पर मुझे जासूसी के लिए ही भेजा गया था।' रोबो ने अपना सारा भेद खोल दिया। तब तक उसके और साथी वहाँ आ चुके थे। उन सभी से उसने मेरा परिचय कराया। इनसे मिलो। यह हैं पृथ्वी के वासी ओम शर्मन् और ये हैं मिनिएचर ग्रह के मशीनी मानव यानी रोबोट।

'और इनके नाम? मैंने टोका।'

'हाँ-हाँ नाम, नाम नहीं, इन्हें नंबर दिए जाते हैं जैसे कि आर 210, आर 240, आर 241 आदि। मेरा नंबर आर 210 है। तुम मुझे रोबोट नंबर 210 भी कह सकते हो।'

परिचय चल ही रहा था कि रोबो को याद आया - आओ तुम्हें यहाँ के बच्चों से मिलाएं। फिर वह हमें एक कक्ष में ले गया। वहाँ बच्चों को एक रोबोट ही पढ़ा रहा था। मेरे दोस्त रोबो ने मेरी उनसे मुलाकात करायी। वे मेरी बात समझ नहीं सकते थे और न ही मैं उनकी। रोबो ने दुभाषिए का काम किया और बातें होने लगीं। बातें हो ही रही थीं कि एकाएक टीचर रोबोट लड़खड़ा कर गिर पड़ा। फिर मेरे दोस्त रोबो ने क्लास की छुट्टी कर दी और हमें लेकर अपनी वर्कशाप में जा पहुँचा।

टीचर रोबोट को भट्टी में डाल दिया गया। मैं मायूस हो गया। रोबो ने शायद मेरे मन की बात जान ली थी। उसने कहा दोस्त, 'यूं मायूस न हो। हम तो बेजान मशीने हैं, भट्टी में तपा देने से भला हमें क्या तकलीफ होगी? यहाँ तो कायदा है - एक रोबोट बेकार हुआ तो तुरंत उसे गला डाला गया और उसकी जगह पर दूसरा तैनात।' हमारी बात खत्म भी न हुई थी कि सामने से हूबहू टीचर रोबोट की तरह का दूसरा रोबोट आता दिखाई पड़ा। उसने मुझसे हाथ मिलाया। मेरे साथ के रोबो ने कहा - 'ये हैं बच्चों के नए टीचर।'

मैंने जानना चाहा - 'आखिर क्यों यहाँ सारा काम रोबोट ही करते हैं, आदमी नहीं?'

रोबो ने जवाब दिया 'आदमी भी काम करते हैं पर रोबोट तो बेजान मशीने हैं, वे यानी हम उनके मूक आज्ञापालक हैं, हमें जो काम सौंपा जाता है, करते हैं। हम विरोध नहीं कर सकते, रो नहीं सकते, यहाँ तक कि घृणा और प्यार भी नहीं कर सकते। इसीलिए यहाँ के आदमियों को हम पर ज्यादा भरोसा है और एक बात यह भी तो है, जहाँ हम बेकार हुए हमें तुरंत नष्ट कर डाला, न कोई रोना-धोना और न ही कोई रिश्ता।' फिर मुझे उस जगह रोबो ले गया जहाँ रोबोट तैयार किए जाते हैं। रोबो ने मुझे दिखाया - यह देखिए, यहाँ लोहे के हाथ तैयार होते हैं, यहाँ पैर ढाले जाते हैं, यहाँ शक्लें बनायी जाती हैं और यह रहा वह कक्ष जहाँ हममें जान डाली जाती है अर्थात् जिस रोबोट से जैसा काम लेना होता है, उसके सारे अंगों को जोड़कर शारीरिक ढांचा खड़ा करने के बाद उनके अंदरूनी हिस्सों में संकेत भर दिए जाते हैं और देखते ही देखते रोबोट जिंदा हो उठता है यानी काम करने लग जाता है।

रोबोट ने एक बात और बताई। वह यह कि यहाँ का नियंत्रक कक्ष बहुत ही वैज्ञानिक है। कहाँ क्या हो रहा है, उसे उसकी तत्काल खबर हो जाती है। उसने मुझे याद दिलाया कि अभी-अभी जब टीचर रोबोट बेकार हो गया था, तो उसके स्थान पर दूसरा टीचर नियंत्रण कक्ष के आदेश से ही तैयार किया गया था। कल से उसी प्रकार वह कक्षाएं लेगा।

मैंने पूछा - 'तुम लोग और क्या कर सकते हो?' उसने उत्तर दिया - 'कहा न, हर काम जो यहाँ के आदमी हम से कराना चाहते हैं, हम कविता करते हैं, अनुवाद करते हैं, खेतों में काम करते हैं और अपनी ही तरह के रोबोट भी बनाते हैं।'

मैं बच्चों से और वहाँ के आदमियों से मिलना और बातें करना चाहता था लेकिन उसने कहा कभी फिर सही। उसे न जाने क्या सूझा कि उसने तेजी से मुड़कर मुझसे कहा आओ, इससे पहले की तुम्हारी

धरती पर सवेरा हो जाए, तुम्हें छोड़ आएं।

मैं फिर यान में बैठा धरती पर वापस आ रहा था। मुझे उतार कर रोबो ने हाथ मिलाया। मैंने उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की और कहा कि फिर मिलेंगे, दोस्त रोबो।

उसने मेरी बात काट कर कहा - 'नहीं, नहीं, ओम्। हमारी यही अंतिम मुलाकात है। मेरे ग्रह के अन्य रोबो इस बात पर नाराज हैं कि मैंने अपना भेद क्यों तुम्हें बता दिया? अब शायद ही वे मुझे धरती का पता लगाने को भेजें।'

तब तक अलविदा कहकर रोबो यान में बैठ चुका था। मैंने हवा में हाथ हिलाया। मेरा दोस्त मुझसे दूर होता जा रहा था - दूर बहुत दूर। मैंने धीरे से घर के भीतर कदम रखा तो देखा मम्मी, पापा, मेरा भाई सोम अभी सो रहे थे। मैं चुपचाप बिस्तर में लुढ़क गया। यही सोचता रहा कि मशीनी रोबो भी इतने अच्छे दोस्त हो सकते हैं, हमारी तरह सोच समझ सकते हैं भला? अभी-अभी जो कुछ हुआ था, मैं उसी के बारे में सोचता रहा। मैं चमत्कृत हो उठा था, विज्ञान कहाँ से कहाँ पहुँच गया है, कैसे निराले हैं विज्ञान के करिश्मे। मैंने देखा सूरज ने पूरब में झांका, अपनी लाली बिखेरी और भोर हो गई। उधर भोर हुई और इधर मैं थका माँदा सोने की तैयारी करने लगा तभी मम्मी ने प्यार से डांट पिलाई - 'अरे बेटा। तुम्हें यह क्या हो गया है। आज तू दिन चढ़े तक सो रहा है? तू तो रोज कभी का उठ जाता था?'

भला मैं माँ को क्या बताता, जो कुछ हुआ मैं खुद ही नहीं समझ पा रहा था।

तब तक मेरा छोटा भाई सोम जाग गया था। मुझसे बोला, हाँ दादा, माँ ठीक कहती है, अच्छे लड़के देर तक नहीं सोते। मैं उनकी भोली बातों पर रीझ उठा और बिस्तर छोड़ चुका था।

मैंने आज तक अपने उस अजीब दोस्त 'मशीनी मानव' के बारे में किसी से भी जिक्र नहीं किया। उससे मैं क्या-क्या अभी पूछने वाला था मगर क्या जानता था कि यह मुलाकात अधूरी रहेगी। मेरा दोस्त रोबो फिर नहीं आया मुझसे मिलने। हालांकि मैं हर रोज रात भर जागकर उस सुरीली जादुई आवाज को सुनने का बेइंतहाँ इंतजार करता हूँ। शायद कभी तो लौटे मेरा दोस्त। दोस्तों सच मानो, कभी रोबो से फिर भेंट हुई तो उसके बारे में आपको जरूर बताऊँगा।

❑❑❑

हिन्दी में विज्ञान साहित्य का विहंगावलोकन

दी में विज्ञान साहित्य के निर्माण की एक गौरवशाली और सुदीर्घ परंपरा रही है जिसकी अब स्वर्णिम स्मृतियां ही शेष हैं। भाग्यवश हमारे बीच अब कुछेक लोग ही बचे हैं जिन्होंने उस काल खंड को जिया और उससे प्रेरित होकर उनमें भी ऐसी प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने अपनी ज्ञान की सीमाओं में और स्वाध्याय से इस परंपरा को पुष्पित और पल्लवित किया। इस सुदीर्घ यात्रा के विहंगावलोकन के लिए हमें अतीत में जाना होगा। हिंदी और हिंदीतर भाषाओं में विज्ञान साहित्य के निर्माण के प्रयास 19वीं शताब्दी के अवसान और 20वीं शती के उन्मेष काल से ही आरंभ हो चुके थे और 20वीं शती के साठादि- सत्तरादि तक इस दिशा में अभूतपूर्व प्रयास हुए लेकिन अस्सी आदि तक आते-आते यह परंपरा शनैः शनैः अवसान को प्राप्त होने लगी। ऐसा क्यों कर हुआ, उसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

हिंदी में विज्ञान साहित्य के पुरोधा स्वामी डॉ.सत्य प्रकाश सरस्वती एक स्थल (अगस्त,1937) पर 1855 में आगरे से छपी पंडित कुंज बिहारी लाल की किताब 'लघु त्रिकोणमिति' को आधुनिक विज्ञान का प्रथम ग्रंथ सूचित करते हैं लेकिन इसके पूर्व ओंकार भट्ट 'ज्योतिष चंद्रिका' 1840 में ही प्रस्तुत कर चुके थे। बहरहाल, इसके बाद वापूदेव शास्त्री कृत संस्कृत में लिखी 'त्रिकोणमिति' का वेणीशंकर झा कृत हिंदी अनुवाद 1859 में प्रकाशित हुआ। फिर 1860 में आरा से बलदेव झा ने अंग्रेजी पुस्तक 'पापुलर नेचुरल फिलासफी' का 'सरल विज्ञान विटप' नाम से हिंदी अनुवाद प्रकाशित किया। 1859-60 में पादरी शोरिंग द्वारा संपादित 'विद्यासागर' नामक विज्ञान पुस्तक माला मिर्जापुर से प्रकाशित हुई। सरकार की ओर से 1861 में 'मैन' से लेसन्स इन जनरल केमिस्ट्री' का मथुरा प्रसाद मिश्र कृत हिंदी अनुवाद छपा। नाम था- 'बाह्य प्रपंच दर्पण'। 1860 में वंशीधर, मोहनलाल और कृष्ण दत्त द्वारा अनुवादित ग्रंथ 'सिद्ध पदार्थ विज्ञान' (यंत्र शास्त्र का ग्रंथ) प्रकाशित हुआ। 1860 में ही प्रयाग से बाल कृष्ण शास्त्री खंडरकर की ज्योतिष का 'खगोल' नाम से हिंदी अनुवाद हुआ।

1867 में जयपुर के राजवैद्य कालिन एस. वैलेन्टाइन ने 'वायु की उत्पत्ति' और रसायन विद्या की 'संक्षेप पाठ' नामक किताब छपवायी। आगरा निवासी बद्री लाल ने एक अंग्रेजी किताब का अनुवाद किया 'रसायन प्रकाश' नाम से, जो कलकत्ते के बैपटिस्ट मिशन प्रेस ने छापा। इसी किताब का दूसरा संस्करण 1883 में लखनऊ के नवल किशोर प्रेस ने छापा। 1887 में वंशीधर की पुस्तक 'चित्रकारी सार' छपी।

1870 से 1880 के बीच रूड़की इंजीनियरिंग कॉलेज के अध्यापक जगमोहन लाल ने कई पुस्तकें कॉलेज के छात्रों के लिए लिखीं। इसी समय 1875 में काशी के मिश्र बंधुओं- लक्ष्मीशंकर, प्रभाशंकर और रमाशंकर ने 'पदार्थ विज्ञान विटप', 'त्रिकोणमिति', 'प्रकृति विज्ञान विटप', 'गति विद्या', 'स्थिति विद्या' और 'गणित कौमुदी' पुस्तकें लिखीं। 1882 में लाहौर के नवीन चंद्र राय ने पंजाब विश्वविद्यालय में पढ़ाई के लिए 'स्थिति तत्व' और 'गणित तत्व' पुस्तकें छपवायीं। इसी वर्ष लखनऊ के नवल किशोर प्रेस ने 'सृष्टि का वर्णन' पुस्तक छापी।

1883 में इलाहाबाद जिले के निवासी काशी नाथ खत्री द्वारा अनुवादित कृषि की पहली पुस्तक 'खेती की विद्या के मुख्य सिद्धांत' शाहजहाँपुर के आर्य दर्पण प्रेस में छपी। 1885 में काशी के पंडित सुधाकर द्विवेदी ने गणित की उच्चकोटि की किताबें 'चलन कलन' और 'चल राशि कलन' प्रकाशित कीं। पंडित सुधाकर द्विवेदी ने वराहमिहिर कृत 'पंच सिद्धांतिका' की टीका 1889 में प्रकाशित की और 1902 में 'गणतरंगिणी' लिखी। प्रायः इसी समय उदय नारायण सिंह ने 'सूर्य सिद्धांत' की टीका प्रस्तुत की (1903) और बलदेव प्रसाद मिश्र ने 1906 में इसी ग्रंथ की टीका लिखी। उदयनारायण सिंह वर्मा ने प्रख्यात गणितज्ञ आर्यभट

(5वीं शती) के 'आर्यभटीयम्' नामक ग्रंथ का हिंदी अनुवाद 1906 में प्रकशित किया। पंडित सुधाकर द्विवेदी ने 'गणित का इतिहास' (1910) लिखकर इसका पूर्ण परिपाक कर दिया। डॉ. विभूति भूषण दत्त और अवधेश नारायण सिंह प्रणीत 'हिस्ट्री ऑफ हिंदू मैथेमेटिक्स' का हिंदी अनुवाद 'हिंदू गणित शास्त्र का इतिहास' (भाग 1, अनु. डॉ. कृपा शंकर शुक्ल, हिंदी समिति, लखनऊ,1954) भी इस विधा का गंभीर और प्रामाणिक अध्ययन है। इसी परंपरा में डॉ. ब्रज मोहन कृत 'गणित का इतिहास' (हिंदी समिति, लखनऊ, 1965) , डॉ. गोरख प्रसाद कृत 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास', 'नीहारिकाएं', 'सौर परिवार' और 'चंद्र सारिणी' आदि ज्योतिष और खगोल के अप्रतिम ग्रंथ हैं। डॉ. गोरख प्रसाद ने मेधावी खगोलज्ञ फ्रेड हॉयल की 'फ्रंटियर्स ऑफ एस्ट्रोनॉमी' का 'ज्योतिष की पहुंच' शीर्षक से उत्कृष्ट हिंदी अनुवाद भी किया। इसी तरह पैट्रिक मूर कृत 'दि प्लेनेट्स' का 'ग्रह और उपग्रह' शीर्षक से (अनु. पवन कुमार जैन, सी.एस. टी.टी., 1968) और वी. फेडिंस्की कृत 'मीटिऑर्स' का हिंदी अनुवाद 'उल्काएं (अनु. पवन कुमार जैन, सी.एस.टी.टी., 1964) शीर्षक से प्रायः उसी काल में पाठकों की जिज्ञासाओं के शमन के लिए सामने आयीं। इसके पहले ही 'सूर्य सिद्धांत' का विज्ञान भाष्य (दो खंडों में, भाष्यकार महावीर प्रसाद श्रीवास्तव) विज्ञान परिषद, प्रयाग ने दिसंबर 1940 में ही प्रकाशित करके ज्योतिष (सिद्धांत) में अभिरुचि रखने वाले पाठकों की उत्कंठाओं का शमन कर दिया था। आगे चलकर पांचवीं सदी के प्रख्यात खगोलज्ञ आर्यभट के अपूर्व ग्रंथ 'आर्यभटीयम्' (रचना काल ई. सन् 499) का हिंदी अनुवाद 'इन्सा' ने भी आर्यभट की पंद्रहवीं जन्मशती के अवसर पर 1976 में प्रस्तुत किया। अनुवाद राम निवास राय ने किया था।

अब विज्ञानेतिहास पर दृष्टिपातः प्राचीन भारतीय विज्ञानों पर गवेषणापरक ग्रंथों की रचना की परंपरा आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय प्रणीत 'हिस्ट्री ऑफ हिंदू केमिस्ट्री' (दो खंड, प्रकाशन क्रमशः 1902, 1908) से आरंभ होती है। इन ग्रंथों के अवलोकन से, प्राचीन भारत में रसायन की महनीय परंपराओं से परिचित होकर पाश्चात्य जगत विस्मित और विमूढ़ रह गया। इस परंपरा को आगे बढ़ाया इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन विभाग के आचार्य डॉ. सत्य प्रकाश (आगे चलकर स्वामी डॉ. सत्य प्रकाश सरस्वती) ने। डॉ. सत्य प्रकाश प्रणीत 'प्राचीन भारत में रसायन का विकास' (प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उ.प्र.,1960) आचार्य राय की ही परंपरा का गौरव वर्धन है। डॉ. सत्य प्रकाश प्रणीत 'वैज्ञानिक विकास की भरतीय परंपरा' (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1959) और 'फाउंडर्स ऑफ साइंसेज इन एन्शेंट इंडिया' (1965) प्राचीन भारत की गौरवमयी विज्ञानीय परंपराओं के गहन अनुशीलन और अध्ययन की परिणतियां हैं। उक्त ग्रंथ का 'भारतीय विज्ञान के कर्णधार' नामक शीर्षक से हिंदी अनुवाद मूल प्रकाशक रिसर्च इंस्टीट्यूट ऑफ एन्शेंट साइंटिफिक स्टडीज, नई दिल्ली ने 1967 में प्रकाशित किया जो आज भी उपलब्ध है। इसी क्रम में उनका एक और ग्रंथ 'क्वायनेज एन एन्शेंट इंडिया' भी उल्लेखनीय है। वैदिक ज्यामिति (वैदिक काल में गणित की उद्‌भावना नहीं हुई थी) और प्राचीन भारतीय गणित पर उन्होंने दो और ग्रंथों -'द शुल्ब सूत्राज' (1979) और 'द भक्षाली मैनुस्क्रिप्ट' (1979) की रचना की है। प्रथम ग्रंथ में इस तथ्य का रहस्योद्‌घाटन है कि कथित पाइथोगोरस प्रमेय पाइथागोरस की न होकर बौधायन, आपस्तंब और कात्यायन आदि भारतीय ऋषियों के 'शुल्ब सूत्र' की परिणति है जबकि दूसरे ग्रंथ में प्राचीन भारत में 'शून्य' के आविष्कार पर प्रकाश डाला गया है।

विगत शती के आरंभ में पेशावर के भक्षाली गांव में शारदा लिपि में भोज पत्र पर लिखी हुई पुरानी गणित की एक पुस्तक मिली जिसको पढ़ने से ज्ञात हुआ कि यह लिपि दसवीं शती की है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि उक्त पांडुलिपि (भक्षाली हस्तलिपि) तीसरी-चौथी शती की मूल कृति की प्रतिलिपि है। इस हस्तलिपि में 1 से 10 तक के अंक संकेत स्पष्टतः अंकित हैं, जिसमें शून्य ने बिंदी का आकार ग्रहण किया है। इन साक्ष्यों का यही निष्कर्ष है कि शून्य प्रणाली का आविष्कार प्राचीन भारत में पहली शती में ही हो चुका था जिसे जन-मानस की पद्धति बनने में कम से कम 10 शतियां व्यतीत हो गईं।

ऊपर हमने जो विवृति प्रस्तुति की, उसका मंतव्य यही है कि अनेक विद्वानों, विज्ञानाचार्यों और विज्ञान के अनुरागियों ने भारत की महनीय विज्ञान परपंराओं की सुसम्बद्ध विचार सारणियां निर्मित की फलस्वरूप भावी पीढ़ियों के लेखकों के लिए एक उर्वर भाव भूमि निर्मित हुई और आजादी के बाद ही हिंदी-विज्ञान की ऐसी धूम मची कि लगा कि हिंदी अब आई कि तब आई। केंद्रीय हिंदी निदेशालय और वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना और लाखों तकनीकी शब्दों का निर्माण, प्रादेशिक हिंदी ग्रथ अकादमियों की स्थापनाएं, विज्ञान के मौलिक ग्रंथों की रचना और प्रख्यात कृतियों के हिंदी अनुवाद की प्रक्रिया जिस उत्साह और उमंग के आरंभ हुई, उसकी धार अस्सी आदि तक आते-आते मंद पड़ चुकी थी। आइए, इन कारणों की पड़ताल करें।

स्वाधीनता के उपरांत विज्ञान साहित्य के नाम पर हिंदी में जो कुछ लिखा गया, उसका अधिकांश अनुवाद की बैसाखियों पर निर्मित हुआ है, मौलिक और आधिकारिक लेखन तो अल्पांश है और यही वह मूल कारण है कि कुछ अंगुलिगण्य लोगों के तमाम व्यक्ति निष्ठ प्रयासों के बाद भी हिंदी-विज्ञान लेखन को वह त्वरा नहीं मिल सकी जो वांछनीय थी।

वैज्ञानिक विषयों के पठन-पाठन या लेखन में माध्यम

उतनी बड़ी बाधा नहीं है जितनी कि तकनीकी शब्दों की जटिलता। तकनीकी शब्दों की जटिलता में विद्यार्थी उलझ कर रह जाता है और पाठ्य सामग्री उसकी समझ के परे हो जाती है। एक अरसे तक डॉ. रघुवीर का कोश ही तकनीकी पुस्तकों के अनुवाद और हिंदी में मौलिक लेखन का आधार रहा है। डॉ. रघुवीर के कोश के आधार पर जो किताबें लिखी गईं, उनकी भाषा इतनी गरिष्ठ होती थी कि वे कभी बोधगम्य बन ही नहीं सकीं। उस समय की शब्दावली की एक झलक आपको निम्नलिखित उदाहरणों से मिलेगी:

प्रलंब जिह्वा शुकपरी	(माउंटेन केमेलियन)
छद्म मूर्च्छालु	(ओपोसम)
मक्षिका-बंधनी	(वीनस फ्लाई ट्रैप)
प्याली-पाशीय	(बटरवर्ट)
ओषजन	(ऑक्सीजन)
नत्रजन	(नाइट्रोजन)
मत्स्यगोधिका या मीन सरट	(इक्थ्योसॉर)
सिंधुगोधिका या सिंधु सरट	(प्लेसियोसॉर)
महागोधिका या दानव सरट	(डाइनोसॉर)
पृष्ठ-कंटकी	(डिमेट्रोड्रोन)

इन उदाहरणों से आप समझ सकते हैं कि प्रारंभिक शब्दावली में लोकप्रियता के कितने आसार थे। ऐसी जटिल शब्दावली न तो चल सकती थी और न चली ही।

शब्दावली निर्माण की भी अपनी विसंगतियां हैं। शब्दों में बोधगम्यता, सहजता के साथ ही अर्थ-बोध भी होना चाहिए जिससे कि वे प्रचलन में आ सकें। तकनीकी शब्दों की जटिलता इस मार्ग में भारी अवरोध है। जिन लेखकों ने डिग्री स्तर की विज्ञान-विषयक पुस्तकें लिखी हैं, उन्हीं को फिर से पढ़ने को वही पुस्तकें दी जाएं तो उन्हें अपना ही लिखा हुआ समझने के लिए पारिभाषिक शब्दों के मूल अंग्रेजी शब्द देखने होंगे। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने आयुर्विज्ञान, भौतिकी, रसायन, प्राणिविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, कम्प्यूटर विज्ञान विषयक शब्दावलियों का निर्माण कर लिया है। फिर भी इनमें भी परिष्कार की व्यापक संभावनाएं हैं। कुछेक हिंदी पुस्तकों से, जो इन्हीं के आधार पर लिखी गई हैं अथवा अनूदित हुई हैं, कुछ अंश उद्धृत हैं, जो इस धारणा की पुष्टि करते हैं : 'प्रकाश-संश्लेषी पटलिकाओं के सतह पर फाइकोइरिथ्रिन युक्त गोलाकार तथा फाइकोसियानिन युक्त चकती आकार फाइको बीलीसोम अनुरेखीय रूप से व्यवस्थित होते हैं। हरिताणु परिवर्धन की प्रारंभिक अवस्थाओं में प्रथम थाइलेक्वायड हरिताणु के अतिरिक्त घटक के अंतर्वेशन के रूप में उत्पन्न होता है, जबकि अनुगामी थाइलेक्वायड प्रथम निर्मित थाइलेक्वायडों के अंतर्वेशन से निर्मित प्रतीत होते हैं।' (शैवाल परिचय, उ.प्र. हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1974 पृ.92) एक अन्य पुस्तक (अनूदित) का अंश देखिए (यह अंश पेंटोक्सिलेलिज अध्याय के परिचय के रूप में दिया गया है) : 'जीवश्म पौधे, वृद्धिज प्रकृति अज्ञात, किंतु संभवतः क्षुप अथवा अत्यंत छोटे वृक्ष। प्ररोह लंबे अथवा छोटे, छोटे प्ररोहों पर, सर्पिल विन्यास में पर्ण, तथा शीर्ष पर जननांग स्थित। स्तंभ बहुरंगी। काष्ठ अरें एक-प्रतिबद्ध। पर्ण मोटे, सरल एवं मालाकार। शिराविन्यास मुक्तांत (शाखा-मिलन बहुत विरल)। मादा अंग सवृंत शहतूत-सम, बीज अवृंत, अध्यावरण के बाहरी गूदेदार परत से लग्न। नर अंग एक चक्र में स्थित, अनेक शाखित बीजाणुधानीधर, जो आधार पर संयोजित होकर चक्रिका बनाते थे।' (अनावृतबीजी की आकारिकी, ले. स्पोर्न, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 75)।

स्वाभाविक है कि ऐसी बोझिल पुस्तकों को विद्यार्थी नकार देगा। परिणाम है कि हिंदी में मौलिक/अनूदित प्रभूत रचनाओं के बाद भी आज महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में हिंदी माध्यम से पठन-पाठन का वातावरण नहीं निर्मित हो सका। शोधपत्रों के लेखन की बात तो न के बराबर है। खेद है कि हमारी पूर्ववर्ती पीढ़ी ने जो संपदा हमें अर्पित की थी, उस गौरवशाली सुदीर्घ परपंरा को हम अक्षुण्ण नहीं रख सके। तमाम सारे सरकारी-गैर सरकारी प्रयासों के बावजूद भी उसको हम संवेग और दिशा-बोध नहीं दे सके। कमोवेश ऐसी ही प्रवृत्ति लोक विज्ञान साहित्य की भी है। लोक विज्ञान (पापुलर साइंस) के नाम पर जो परोसा जा रहा है, उसमें गुणवत्ता, गांभीर्य, गवेषणा की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव है। रातों रात सितारा बन जाने और मीडिया पर छा जाने की उमंग तो है, लेकिन उसकी तैयारी अधकचरी है, विषय की पारंगतता नहीं है, विज्ञान बोध तो कतई नहीं है। लोक विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे तमाम सारे लोग प्रवृत्त हैं जिन्होंने विज्ञान की किसी भी विधा का अध्ययन ही नहीं किया है। छपास की व्याधि से ग्रस्त लोग छप भी रहे हैं लेकिन उनकी नकेल कसने वाली आचार्य परपंरा का ही लोप हो गया है। जो अवशेष भी हैं, वे समय से भी तेज भागती दुनिया में कदाचित अप्रासंगिक हो चले हैं, उनकी भला सुनता ही कौन है? अपनी ढपली, अपना राग। और हिंदी में विज्ञान साहित्य के अधोपतन के यही मूल कारण भी हैं। हिंदी-विज्ञान की प्रगति के मार्ग में एक बार पुनः संक्रमणकालीन बेला आसन्न है, इस पर गंभीरता से विमर्श आरंभ हो जाना चाहिए और निष्ठ प्रयास भी तभी इसका मार्ग प्रशस्त होगा, अन्यथा हम इसकी शोकांतिका ही पढ़ते रहेंगे।

❑❑❑

सैंधव सभ्यता में विज्ञान के उत्कर्ष

पुरातत्ववेत्ताओं के अथक श्रम और प्रयासों के कारण हम इतिहास के उन भूले बिसरे पृष्ठों को समझ सकने में समर्थ हो सके हैं जिनका कोई उल्लेख हमें साहित्य में नहीं मिलता। प्रायः हम इस शती के प्रारम्भ में एक ऐसी भरी-पूरी एवं पूर्ण विकसित संस्कृति का हमें ज्ञान हुआ जिसके बारे में जानकर समूचा संसार विस्मित एवं विमुग्ध हो उठा। इसे 'सिन्धुघाटी की सभ्यता' के नाम से अभिहित किया जाने लगा है क्योंकि इसका विस्तार सिंधुघाटी और उसके पार्श्ववर्ती सीमांतर प्रदेशों तक था। ऐसी उन्नत संस्कृति क्यों कर और किन परिस्थितियों में विनष्ट हुई और काल कवलित हो गई। इस पर चर्चा व्यर्थ है, बहरहाल हमारे लिए यही संतोष का विषय है कि इस संस्कृति के कला-शिल्पों के भग्नावशेष आज भी हमारे लिए सुरक्षित बचे पड़े हैं। पुरातत्ववेत्ताओं की धारणा है कि यह सभ्यता ईसा से 4,000 वर्ष पूर्व से लेकर 1500 वर्ष पूर्व की अवनश्य रही होगी। भारत वर्ष में इससे पुरातन किसी सभ्यता के पुरातात्विक चिन्ह नहीं मिले हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि 'सैंधव सभ्यता' एक परिपक्व सभ्यता थी, यह किसी आदिम सभ्यता की प्रतीक नहीं है। यह सभ्यता इतनी परिपक्व थी कि उस काल के मनुष्य को अपनी चर्चा सुख और शांति से चलाने के लिए पर्याप्त थी। नगर योजना सुसम्बद्ध और वैज्ञानिक दृष्टि से स्वास्थकर एवं सुखकर थी, कृषि, पशुपालन, वाणिज्य और व्यवसाय उन्नत थे, शिल्प और तकनीकी ज्ञान उन्नत था, जिन पर हमें आज भी आश्चर्य होता है। आज से प्रायः 6000 वर्ष पूर्व के मानव संस्कृति के अवशेष हमें प्राप्त हुए हैं, यही प्रतीति हमारे लिए सुखद है और विस्मयकारी तथाय तो यह है कि ये पुरातात्विक चिन्ह किसी प्रकार सुरक्षित रह सकगे?

सैंधव सभ्यता के स्थल - इस शती के प्रारम्भ में 1921 में, पश्चिमी पंजाब में हड़प्पा स्थल पर इस सभ्यता का ज्ञान हुआ और अगले ही वर्ष एक अन्य प्रमुख स्थल मोहन जोदड़ो की खोज हुई तब पुरातात्विकों की यही धारणा थी कि यह सभ्यता अनिवार्यतः सिन्धु घाटी तक सीमित थी अतः इसे सिंधुघाटी की सभ्यता या सैंधव सभ्यता शब्दावली दी गई। कालांतर में ज्ञात हुआ कि इस सभ्यता का विस्तार सिंधु घाटी की सीमाओं के पार्श्ववर्ती क्षेत्रों तक था, तब इसे हड़प्पा सभ्यता भी कहा जाने लगा। 1921 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक जहन मार्शल के निर्देश पर दयाराम साहनी ने पंजाब (पाकिस्तान के मांट गोमरी जिले, सम्प्रति शाहीवाल) में रावी नदी के बायें तट पर स्थित हड़प्पा के टीले से पुरान्वेषण किया। वर्ष 1922 में राखालदास बनर्जी ने सिंध प्रांत के लरकाना जिले के सिंधु नदी के दाहिने तट पर स्थित मोहन जोदड़ो के टीलों का पता लगाया। इस सभ्यता के प्रमुख स्थल इस प्रकार हैं।

मोहन जोदड़ो – यह स्थल दो खण्डों में विभाजित है – पश्चिमी और पूर्वी। अपेक्षाकृत पश्चिमी खण्ड छोटा है। सारा निर्माण कार्य चबूतरे पर हुआ है। कच्ची ईंटों से किलेबंद दीवार बनी है जिसमें मीनारें एवं बुर्ज हैं। पूर्वी खण्ड में पूरा नगर किसी एक चबूतरे पर नहीं बना है। इस खण्ड के महत्वपूर्ण अवशेष हैं – अन्न भंडार, पुरोहित आवास, महाविद्यालय भवन, तालाब आदि। मोहन जोदड़ो के मकान बहुधा पक्की ईंटों से निर्मित है, कुछ दुमंजिले हैं।

हड़प्पा – यह सिंधु सभ्यता का महत्वपूर्ण स्थल है जो पाकिस्तान के पंजाब के मोंट गोमरी जिले में एक बड़ा गांव है। चार्ल्स मेसन ने 1826 में हड़प्पा नामक स्थल पर विशाल टीलों के बारे में लिखा था पर 1921 में ही इसकी उत्खनन हो सका। हड़प्पा में दो खण्ड हैं – पश्चिमी और पूर्वी। पूर्वी खण्ड चोरों द्वारा विनष्ट कर दिया गया था। पश्चिमी खण्ड में किलेबन्दी पाई गई है। यहां के महत्वपूर्ण अवशेष हैं – श्रमिक आवास तथा सामान्य आवास क्षेत्र के दक्षिण में कब्रिस्तान।

चन्हूदड़ो – यह मोहन जोदड़ो से 80 मील दक्षिण में स्थित है। यहां प्राप्त अवशेषों में मनके बनाने का कारखना महत्वपूर्ण है। इसका प्रथम उत्खनन 1931 में एम. जी. मजूमदार ने कराया, तत्पश्चात् 1935 में मैके ने।

कालीबंगा – यह स्थल राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले में स्थित है। 1953 में अमलानंद घोष ने इसका उत्खनन कराया फिर 1961 में वी. के. थापर एवं बी. बी. लाल ने। यहां पर हवनकुंडों के अस्तित्व के साक्ष्य मिले हैं। मोहन जोदड़ो की तुलना में यहाँ दीनहीन बस्ती थी। कालीबंगा के घर कच्ची ईंटों के बने थे। यहाँ कोई स्पष्ट घरेलू जल निकास प्रणाली नहीं थी। यहां से प्राप्त जुते खेत (कूंड) का प्रमाण विश्व का प्राचीनतम साक्ष्य है।

लोथल – गुजरात के अहमदाबाद जिले में स्थित इस स्थल की खोज 1957 में एस. आर. राव ने की थी। यहां पर दो भिन्न-भिन्न टीलों की जगह पूरी बस्ती एक ही दीवार से घिरी है। इसके पूर्वी खण्ड में पक्की ईंटों का तालाब जैसा घेरा मिलता है। जिसकी व्याख्या गोदी बाड़े के रुप में की जाती है।

कोट दीजी – पाकिस्तान के सिंध प्राप्त में सिंधु घाटी के तट पर स्थित इस स्थल की खोज 1955 में फजल अहमद ने की थी। कोट दीजी के उत्खनन से कुल 16 स्तर प्रकाश में आए हैं जिनमें से 12 स्तर प्राक् सैंधव और अंतिम 3 सैंधव सभ्यता से सम्बद्ध हैं। कोट दीजी की प्राक् सैंधव संस्कृति दो भीषण अग्निकांडों में विनष्ट हो गयी।

सुत्कागेंडोर या सुक्तगेंडोर – यह स्थल कराची से 300 मील पश्चिम बलूचिस्तान में स्थित है। इसकी ओर सर्वप्रथम 1927 में सर आरेल स्टाइन का ध्यान गया और 1962 में जार्ज डेल्स द्वारा उत्खनन आरम्भ हुआ। यहां एख प्रसिद्ध प्रस्तर किला था। बेबीलोनिया से इसका महत्वपूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध था।

बनावली – हरियाणा के हिसार जिले में स्थित इस स्थल का उत्खनन 1973 में आर. एस. विष्ट द्वारा हुआ। यहां प्राक् हड़प्पा एवं हड़प्पा संस्कृति के महत्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सिंधु सभ्यता मात्र सिंधु घाटी तक ही सीमित नहीं थी। यद्यपि इसका केंद्र स्थल पंजाब और मुख्य सिंधु घाटी में अवस्थित है। यहीं से इस संस्कृति का विस्तार दक्षिण और पूरब की ओर हुआ। इस प्राकर हड़प्पा संस्कृति के अंतर्गत पंजाब, सिंध और बलूचिस्तान के भाग ही नहीं अपितु गुजरात, हरियाणा, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सीमांतवर्ती भू-भाग भी सम्मिलित हैं। इसका विस्तार उत्तर में जम्मू से लेकर दक्षिण में नर्मदा के मुहाने भगतराव तक और पश्चिम में बलूचिस्तान के मकरान समुद्र तट सुत्कागेंडोर से लेकर उत्तर पूर्व में मेरठ तक (आलमगिरिपुर) था। इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल 12,99,600 किमी. त्रिभुजाकार आधुनिक पाकिस्तान और प्राचीन मिश्र से भी बड़ा था। अब तक इस महाद्वीप में हड़प्पा संस्कृति के प्रायः 1000 स्थलों का पता लगाया जा चुका है। इसमें कुछ स्थल आरम्भिक अवस्था के हैं (कालीबंगा, बनावली, गणेश्वर, बालाकोट), कुछेक परिपक्व अवस्था के और कुछ उत्तर अवस्था (रंगपुर, रोजड़ी, पाटन) के हैं। इस संस्कृति में सर्वाधिक महत्व के दो नगर थे – पंजाब में हड़प्पा और सिंध में मोहन जोदड़ो। दोनों एक दूसरे से प्रायः 483 किमी. दूर थे और सिंधु नदी द्वारा सम्पृक्त थे। तीसरा महत्वपूर्ण नगर सिंध में मोहन जोदड़ो से 130 कि.मी. दक्षिण स्थित चन्हूदड़ो था और चौथा नगर गुजरात में खंभात की खाड़ी के ऊपर स्थित लोथल था, पांचवां नगर राजस्था नमें कालीबंगा (काले रंग की चूड़ियां), छठां नगर हरियाणा के हिसार जिले में स्थित बनावली था। उक्त 6 स्थलों पर परिपक्व हड़प्पा संस्कृति के दर्शन होते हैं। इनके अतिरिक्त सुत्कागेंडोर और सुरकोद्दा के समुद्रतटीय नगरों में भी यह संस्कृति परिपक्व अवस्था में दिखाई पड़ती है। एक-एक नगर दुर्ग का होना इन दोनों की विशेषता है। उत्तर हड़प्पावस्था गुजरात के काठियावाड़ प्रायद्वीप में रंगपुर व रोजड़ी स्थलों पर पायी गई है।

उन्नत तकनीकी ज्ञान – सैंधव सभ्यता के जो पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं उनसे स्पष्ट होता है कि यह संस्कृति वैज्ञानिक एवं तकनीकी दृष्टिकोण से अति उन्नत एवं परिष्कृत संस्कृति थी जिसने अपने सुख एवं वैभव के सारे उपादान विकसित कर लिए थे। नाना धातुओं एवं धातुकर्म से परिचित जीवन शैली हमारे लिए आज भी विस्मयकारी है। यह अनुमान करना व्यर्थ है कि वैदिक सभ्यता सैंधव सभ्यता के तारतम्य में आगे की है अथवा पीछे की क्योंकि इसमें मतैक्य नहीं है। इस संस्कृति के पुरावशेषों का सुरक्षित रह जाना ही हमारे तोष के लिए पर्याप्त है। आइए, सैंधव संस्कृति के तकनीकी कौशल की मीमांसा करें।

हड़प्पा में सोने के आभरण, सोना-चांदी मिश्रित तश्तरी, सोने के दानों से निर्मित कड़े, कार्नेलियन के हार, पक्के स्टीएटाइड के हार, फाएन्स के दाने, मुहरें, मुद्राएं और इसी प्रकार की नाना वस्तुएं मिली हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सैंधव सभ्यता में सोने और चांदी सरीखी धातुओं का कार्य कुशलता से होता था।

मोहन जोदड़ो का माप दंड (सिंधु का इंच)

माप-तौल के साधन

हड़प्पा और मोहन जोदड़ो दोनों ही स्थानों से छोटे-छोटे आयताकार पिंड मिले हैं जो तौलने के बाट थे। इनमें से कुछ बाट बेलनाकार थे और कुछ चौकोर घनाकृति के। कुछ बाट चिकने पत्थर के भी बने थे। इन बाटों पर किसी भी प्रकार का कोई अंकन नहीं था। हेमी ने सर्वप्रथम इन बाटों पर अनुसंधान कार्य किया, उन्हें तौला और उनके विवरण प्रकाशित किए। हड़प्पा में तौलने के उपयोग में आने वाले बहुत से बाट पाये गए हैं। ये बाट ढोल आकृति, दंडाकृति, गोल और शंकु की आकृति के हैं। हड़प्पा का सबसे बड़ा बाट 4.3 × 4.3 × 3.2 इंच का माप और सबसे छोटा बाट 0.3 × 0.3 × 0.25 इंच का है। मोहन जोदड़ो में पाया जाने वाला सबसे छोटा बाट इसी माप का है किन्तु सबसे बड़ा बाट 6.8 × 6.0 × 3.8 इंच का है। अधिकांश बाट चर्ट अर्थात् फ्लिंट या केलसिडोनी के समान एवं पत्थर से बनाये जाते थे। मोहन जोदड़ो से एक मापदंड भी प्राप्त हुआ है। 1931 में मोहन जोदड़ो से शंख का एक चिन्हित टुकड़ा मिला। विशेषज्ञों की धारणा है कि यह सैंधव काल का मापदंड था। उक्त टुकड़ा 6.62 × 0.62 सेमी. माप का था। इसमें ९ समांतर रेखाएं खिंची हुई हैं जिनमें से प्रत्येक दो रेखाओं के बीच की दूरी 0.264 इंच थी। एक रेखा पर एक वृत्त खिंचा हुआ है और उसके बाद पांचवीं रेखा पर एक बड़ा सा बिंदु बना हुआ है। वृत्त और बिंदु के बीच 1.32 इंच का अन्तर है। अनुमान किया जाता है कि सैंधव काल में इंच की माप यही रही होगी।

मोहन जोदड़ो का माप दंड (सिंधु का इंच)

हड़प्पा में कांसे का बना एक छड़ मिला है। इस छड़ में बराबर-बराबर दूरी पर 9 निशान लगे हुए हैं। इस छड़ में दो निशानों के बीच की दूरी 0.264 इंच है। सिंधु सभ्यता के लोग लम्बाई नापने के लिए सम्भवतः इस छड़ का प्रयोग करते थे। चन्हूदड़ो में भी तौलने के बाट पाये गये हैं जिसका विस्तृत विवरण अर्नेस्ट मैके ने चन्हूदड़ो एक्सकेवेशंस (1935-36) में प्रकाशित किया है। चन्हूदड़ो में 118 बाट पाये गये हैं जिनमें से 30 घनाकृति के, 5 गोल (चपटे सिरों से युक्त) और 17 पत्थर की बटियां थीं।

सैंधव सभ्यता की धातुएं

सैंधव सभ्यता के लोग सुवर्ण, चांदी, तांबा, सीसा, वंग या रांगा आदि धातुओं से पूर्णतः परिचित थे और अपने जीवन में उनकी बनी वस्तुओं को व्यवहार में लाते थे। मार्शल (मोहन जोदड़ो एंड दि इंडस वैली सिविलाइजेशन, 1931) के अनुसार मोहन जोदड़ो में जो सोने की वस्तुएं मिली हैं, उनको देखने से प्रतीत होती है कि इनका सोना सिंधु घाटी में दक्षिण से गया होगा। हड़प्पा में सोने के आभरण, सोना-चांदी मिश्रित तश्तरी, सोने के दानों से निर्मित कड़े, कार्नेलियन के हार, पक्के स्टीएटाइड के हार, फाएन्स के दाने, मुहरें, मुद्राएं और इसी प्रकार की नाना वस्तुएं मिली हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सैंधव सभ्यता में सोने और चांदी सरीखी धातुओं का कार्य कुशलता से होता था। मार्शल की धारणा है कि प्राचीन भारत में यदि भारतीयों को सोने से चांदी को पृथक करने की कला आती रही हो तो निश्चय ही सिंधु घाटी में चांदी भी दक्षिण भारत से गई होगी। मैके की धारणा है कि मोहन जोदड़ो में सोने की अपेक्षा चांदी का प्रचलन अधिक था। इसका निर्धारण करना कठिन है कि चांदी मोहन जोदड़ो में कहां से आयी अथवा इसके अयस्क किस भांति के थे। मुक्त धातु के रुप में, अयस्क के रुप में और सोने के साथ संयुक्त इन्हीं तीन रुपों में प्राकृतिक चांदी मिलती है। मोहन जोदड़ो में मुक्त चांदी आज भी नहीं पायी जाती। चांदी कभी-कभी सीसे से संयुक्त 'आर्जेटिफेरस गैलीना' में भी पायी जाती है। अतः अनुमान यही है कि आर्जेटिफेरस गैलीना से सिंधु घाटी के लोग चांदी निकालते रहे होंगे और मोहन जोदड़ो में सीसा भी पर्याप्त पाया जाता है। डह्. हमीद ने मोहन जोदड़ो में पाये गए चांदी के एक नमूने में शीशे की कुछ प्रतिशतता प्रमाणित की है। चांदी के रासायनिक विश्लेषण से उन्होंने ज्ञात किया कि उक्त नमूने में चांदी 94.52%, शीशा 0.42%, तांबा 3.68% और अविलेय भाग 0.85% है। अतः अनुमान है कि उक्त संस्कृति के लोग आर्जेटिफेरस गैलीना से ही चांदी प्राप्त करते थे। अयस्कों से चांदी निकालने की कला का उन्हें ज्ञान नहीं था। कांसा और तांबा निर्मित नाना अस्त्र-शस्त्र

भी प्रभूत मात्रा में हड़प्पा में मिले हैं। कुल्हाड़ी या परशु के अतिरिक्त गदाएं, बर्छियां, हंसिया, आरी, छूरा, तीर के मुख आदि इन अस्त्रों में प्रमुख हैं। हड़प्पा में सिलाई करने वाली सूइयां भी मिली हैं। 4, 3.93 और 3.85 इंच लंबे धातु के कांटे (पिनें) भी पाए गए हैं। ये कांटे दोनों सिरों पर नुकीले थे। एक घट में तांबे के कुछ टुकड़े मिले हैं और साथ में लोलिंगाइट का एक पिंड भी मिला है जो लोहे का आर्सेनाइड पाया गया। कांसे के एक टुकड़े में 8% वंग (रांगा) और शेष तांबा मिला। शुद्ध तांबे (98% तांबा) का एक छूरा भी मिला है। 2 इंच ऊंची तांबे की बनी एक रथ की मूर्ति भी मिली है जिसमें रथ चलाने वाली आकृति भी बनी हुई है। सिंधु घाटी में प्राप्त धातुओं के 48 पिंडों की परीक्षा करने पर उनमें आर्सेनिक, निकेल और शीशे की विद्यमानता पायी गई। तांबे से बने भांडों और वस्तुओं में वंग, आर्सेनिक, एंटीमनी, शीशा, निकेल और लोहा पाया जाता है। 1 से 3 प्रतिशत तक वंग मिल जाने से तांबे में कठोरता आ जाती है अतः वंग मिश्रित तांबे से कटार, चाकू, बरछा आदि बनाया जाता था। कांसे में 8 से 11 प्रतिशत तक रांगा मिलने से उसमें दृढ़ता आ जाती है। सैंधव सभ्यता के लोगों को रांगे के प्रभावों का अच्छा ज्ञान रहा होगा और कदाचित इसी नाते उन्होंने अपनी मिश्र धातुओं में सदैव उचित मात्रा में रांगा मिलाया। मोहन जोदड़ो और हड़प्पा के समान ही चन्हूदड़ो में तांबे और कांसे के पात्र बहुतायत से मिले हैं। घड़ों के ढक्कन, तुलाओं के पलड़े और दंड, धारदार कुल्हाड़ियां, आरी, बरछे, चाकू, तीर के नोक, मछली फंसाने की कटिया, छेनी, आरा, दंड, गुलिका बनाने के औजार, फरसा आदि विविध उपयोग की सामग्रियां यहां से प्राप्त हुई हैं।

Terracotta Crafts of Harappa

सैंधव सभ्यता में प्रयुक्त अन्य पदार्थ

सैंधव सभ्यता में आभूषण भी मिले हैं जिनमें धातुओं का प्रयोग हुआ है। सैंधव सभ्यता में हाथी दांत का उपयोग मालाओं, कंघों, धनुषों और छड़ियों में होता था, शंख से बने पदार्थों का भी प्रचलन प्रचुर था, फाएन्स और अवलेपों का प्रचलन खूब था। फाएन्स शब्द का प्रयोग लुक फेरे गए चमक्दार मिट्टी या पोर्सलीन के बर्तनों के लिए होता है। इन बर्तनों पर रंगीन चित्रकारी भी की जाती है। सैंधव सभ्यता के लोगो को लुक या काच बंधन कर्म (ग्लेज) करने की कला ज्ञात थी। काचीय मिट्टी के बने मनका, गुरिया और गुलिकाएं मिली हैं। मोहन जोदड़ो में कुछ ऐसे प्राचीन घट मिले हैं जो काचीय मिट्टी की आभा से युक्त है। मैके की धारणा है कि काचीय अवलेप भी अवश्य ही भारतवासियों का आविष्कार रहा होगा। यह पदार्थ बाहर से देखने पर पारांध कांच के समान मालूम होता है। इच्छानुसार इसे किसी भी आकृति में ढाला जा सकता है। इस पर कलात्मक चित्रकारी भी की जा सकती है। यह अवलेप अपनी दृढ़ता और सघनता के लिए महत्वपूर्ण थी। मोहन जोदड़ो में जिस प्रचुरता से फाएन्स मिला, उसी अनुरुप काचीय अवलेप भी। भारत के पुरातत्व विभाग के रसायनज्ञ सनाउल्लाह ने इन काचीय अवलेपों में से एक का विश्लेषण किया था। डह्. हमीद ने भी किसी एक घट में प्रयुक्त अवलेप का विश्लेषण किया। डह्. हमीद ने काचीय अवलेप से बनी एक मानव मूर्ति और एक पात्र के आधार भाग की परीक्षा की थी। इस परीक्षण के अंक मिस्र में पाये गए अंकों से साम्य रखते थे।

सैंधव सभ्यता में हरिताश्म या वैदूर्य, अमेजन मणि (हरे रंग का फेल्सपार), स्फटिक (क्वार्टज), स्टीएटाइट या टल्क, एलेबेस्टर (चूने का जल युक्त सल्फेट), हेमेटाइट, नीलम या एमेथिस्ट, स्लेट, एगेट और एगेट जैस्पर, गेरु या लाल ओकर, जेड या जेडाइट, हरित मृतिका आदि पदार्थ प्रयुक्त होने के पर्याप्त साक्ष्य मिले हैं। सैंधव सभ्यता में नाना आकृतियों की गुलिकाएं, मनके और दाने मिले हैं जिनमें काला मृदु प्रस्तर, फाएन्स, स्टीएटाइट, कैलसाइट, मृतिका शंख और स्वर्ण की टोपियों से युक्त स्टीएटाइट पदार्थों की उपस्थिति पायी गई है। इनमें धातुओं के प्रयोग का भी चलन था। तांबे, कांसे और सोने-चांदी के मनके भी पाए गए थे। मनकों और दानों का प्रयोग गले में पहनने वाले हार बनाने में किया जाता था। इन दानों को पिरोने के लिए सोने, तांबे और कांसे के धागे (तार) प्रयुक्त होते थे। हार के अतिरिक्त कानों में पहनने वाले आभरण भी मिले हैं। अंगूठियाँ, कान की बाली, नथ के अतिरिक्त बाजूबंद और कंकण भी मिले हैं। यहां तक कि कंघे और बटन का भी प्रचन यहां था। अलबत्ता मोहन जोदड़ो और हड़प्पा में कांच अथवा कांच से बने किसी पदार्थ की जानकारी नहीं है। यह एक विचित्र संयोग है कि वहां काचीय अवलेप और लुक फेरने वाले बर्तनों की कला के आविष्कार के बावजूद कांच का ज्ञान नहीं था। धातु प्रयोग और धातु कर्म में सैंधव सभ्यता के लोग निष्णात थे। यह कांस्य संस्कृति का युग ही था। मोहन जोदड़ो से प्राप्त 'नर्तकी बाला' की कांसे की ढली हुई मूर्ति मिली है। सैंधव सभ्यता के लोग तांबे और कांसे की ढलाई करना जानते थे। भारत भूमि में आर्यों के आगमन के साथ यहां लौह युग का शुभारंभ हुआ।

❑❑❑
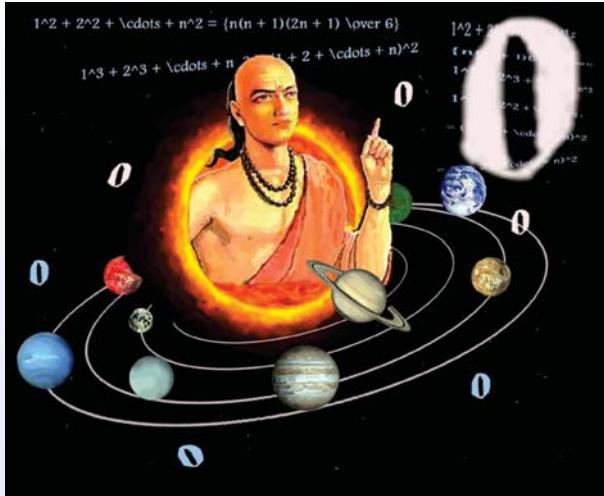
कोपरनिकस नहीं, आर्यभट

भारतीय इतिहास का गुप्त काल हिंदू धर्म और भारतीय संस्कृति के विकास का युग था। इस युग में भारतीय ज्योतिष अपनी पराकाष्ठा पर थी जिसका श्रेय कई विद्वानों-आर्यभट, वराहमिहिर, भास्कर आदि को जाता है लेकिन आर्यभट प्रथम को भारतीय ज्योतिष का प्रणेता माना जाता है। आर्यभट से पहले भी कई आचार्य हुए हैं जिन्होंने अपने ज्योतिष सिद्धांत-ग्रंथ में अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित के प्रश्न दिए हैं। इन ज्योतिषियों में गर्ग की चर्चा कई स्थानों पर आती है। महर्षि गर्ग राजा पृथु के ज्योतिषी थे। गर्ग प्रणीत गार्गीसंहिता अब लुप्तप्राय हो गई है।

जब बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा, गुप्तकाल में हिंदू धर्म का उत्थान हुआ और यवनों के ज्योतिष का भी भारत भूमि में आगमन हुआ, तब भारतीय ज्योतिष का भी अध्ययन-अध्यापन जोरों से होने लगा। इसकी परिणति यह हुई कि विक्रम की छठीं शती में ज्योतिष के कई आचार्य हुए, कुछ ने भारतीय ज्योतिष के ग्रंथ रचे, कुछ ने यवन ज्योतिष का सार तैयार किया और कुछ ने दोनों का सार लेकर ज्योतिष के ग्रंथों की रचना की। कुछ विद्वानों ने ज्योतिष के नवोन्मेषों का भी समावेश किया। इनमें सर्वाधिक ख्याति मिली आचार्य आर्यभट प्रथम को और यहीं से भारतीय ज्योतिष की सुसम्बद्ध शृंखला का उत्स भी होता है। यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्योतिष की जो ध्वजा कीर्ति आचार्य आर्यभट प्रथम के समय (5वीं शती) में फैली, वह भास्कराचार्य के काल तक (12वीं शती) फीकी पड़ चुकी थी। आर्यभट प्रथम और भास्कर द्वितीय प्राचीन भारत के दो महान ध्रुव थे जिनसे ही भारतीय विज्ञान की गौरवशाली परंपरा का उत्स होता है और उन्हीं के साथ समापन भी। इनके बाद विदेशी आक्रांताओं का आवागमन आरंभ हो चुका था। इस काल के बाद जो भी गणितज्ञ हुए, उन्होंने अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों की या तो टीकाएं लिखीं अथवा ग्रंथ भी लिखे जो उतने उल्लेखनीय नहीं थे।

आर्यभट प्रथम : प्रख्यात गणितज्ञ एवं ज्योतिर्विद्

प्राचीन भारत में आर्यभट नाम के दो खगोलज्ञ हो चुके हैं। जिन आर्यभट का उल्लेख यहां किया जा रहा है, उनका जन्म कुसुमपुर (पटना) में 476 ई. में हुआ था। चूंकि इसी नाम के एक अन्य खगोलज्ञ लगभग 950 ई. में हुए थे, अतः कुसुमपुर के आर्यभट को आर्यभट प्रथम के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन्होंने अपना जन्मकाल बताते हुए लिखा है कि 60 संवत्सरों के 60 युग और तीन युग पाद (सतयुग, त्रेता, द्वापर) जब बीत गए तब मेरे जन्म से 23 वर्ष बीत चुके थे। गणना करने पर यह अवधि ई. सन् 476 ठहरती है।

‘षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।

त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मय जन्मनोऽतीताः।।1।।

–काल क्रियापाद

आर्यभट ने 23 वर्ष की अवस्था में 499 ईस्वी में अपने प्रख्यात ग्रंथ 'आर्यभटीयम्' की रचना की। आर्यभटीयम् चार खण्डों-गीतिकापाद या दशगीतिका, गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद में विभाजित है। गीतिकापाद में 10 श्लोक, गणितपाद में 33 श्लोक, कालक्रियापाद में 25 तथा गोलापाद में 50 श्लोक हैं। आर्यभटीयम् के प्रथम खंड में संख्याओं को अक्षरों द्वारा व्यक्त करने की संकेत लिपि, दूसरे खंड में वर्गमूल, घनमूल निकालने की विधियां, क्षेत्रफल और आयतन निकालने के नियम, वृत्तीय अचर का मूल्य आदि दिए गए हैं। तीसरे खंड में सौर वर्ष, चंद्र मास, नक्षत्र मास, अधिमास, ग्रहों का स्थान निर्धारण तथा चौथे खंड में ध्रुव वृत्त, क्षितिज आदि का वर्णन है।

गणित में हमारे देश की सबसे युग प्रवर्तक खोज थी दशमलव पद्धति की जो अब सारे विश्व में स्वीकृत हो चली है। यह पहली नौ संख्याओं तथा शून्य पर आधारित है। इस अंक लेखन ने अंक शास्त्रीय गणनाओं एवं पद्धतियों को अत्यंत सरल बना दिया। हिंदू गणितज्ञों में कब और किसने शून्य का आविष्कार किया, ठीक से ज्ञात नहीं है लेकिन इब्नवशिया, अलमसूदी और अलबेरुनी जैसे विद्वान इसके आविष्कार का श्रेय हिंदुओं को देते हैं। शून्य के आविष्कार से पूर्व अंकों के लिए चिह्न हुआ करते थे, जिनके आधार पर कुछ ही गणना की जाती थी, रोमन अंकों की मदद से रोमवासी कुछ हजार तक ही लिख सकते थे। यूनानी भी दस हजार से अधिक न जानते थे। इस बारे में अलबेरुनी (सन् 1031 ईस्वी) ने लिखा है कि अंक क्रम में जो एक हजार से अधिक जानते हैं, वे हिंदू (भारतीय) हैं।

प्राचीन हिंदुओं के पास अंकों को सूचित करने के लिए अंक संज्ञाएं विद्यमान थीं। इस संबंध में आर्यभट अंकों के स्थान का नाम गिनते हुए लिखते हैं - एक (1), दश (10), शत (100), सहस्र (1000), अयुत (10000), नियुत (100000), प्रयुत (1000000), कोटि (10000000), अर्बुद (100000000) और वृंद (1000000000) स्थानों में से प्रत्येक अपने पीछे वाले से दस गुना है।

इतना ही नहीं, आर्यभट ने अंकों के मान के लिए अक्षरों की संकेत लिपि भी बनाई है। संस्कृत वर्णमाला के आधार पर उन्होंने अंक निरूपण की भी प्रणाली दी है।

सूर्य-केंद्रिक सिद्धांत के प्रणेता

पश्चिम में एक समय ऐसा था जब धर्म एवं अंधविश्वासों ने समाज को बुरी तरह जकड़ रखा था। इन अंधविश्वासी मान्यताओं के विरुद्ध जब विज्ञान ने कुछ कहा तो पुरस्कार स्वरुप वैज्ञानिकों को पोप का कोपभाजन बनना पड़ा। खगोल विज्ञान के इतिहास के प्रारंभिक पृष्ठ कोपरनिकस, ब्रूनो और गैलिलियो के बलिदानों से रक्त रंजित हैं।

कोपरनिकस (1473-1543) को इस बात का श्रेय है कि उसने ही पहले ब्रह्मांड के 'सूर्य-केंद्रिक सिद्धांत' की व्याख्या की। इसका तात्पर्य यह था कि ब्रह्मांडीय गतिविधि का केंद्र सूर्य है न कि पृथ्वी जैसा कि मूर्ख पादरियों और बाइबिल की अवधारणाएं थीं। कोपरनिकस ने 1540 में अपने ग्रंथ "De Revolutionibus Orbium Coelestium" में लिखा कि - ● ग्रह निकाय का केंद्र पृथ्वी नहीं, वरन् सूर्य है। ● सूर्य स्थिर है और पृथ्वी गतिशील है, वह भी अन्य ग्रहों की भांति एक ग्रह है और शुक्र तथा मंगल की कक्षाओं के बीच एक कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करती है। यदि हम भारतीय खगोल शास्त्र के पन्ने पलटें तो हमें पता चलता है कि कोपरनिकस से भी हजार साल पहले भारतीय ज्योतिर्विद् आर्यभट प्रथम (रचनाकाल 499 ई०) ने इस सिद्धांत की व्याख्या की थी। अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'आर्यभटीयम्' में उन्होंने लिखा कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती हुई सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। आर्यभट ने यह भी लिखा कि चंद्रमा अथवा अन्य ग्रहों में प्रकाश नहीं है बल्कि वे सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं तथा पृथ्वी की भांति सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। आर्यभट ने सर्वप्रथम पूर्व प्रचलित धारणाओं को निर्मूल करते हुए बताया कि जब हम नाव में गति करते हैं तब सारी स्थिर वस्तुएं उल्टी दिशा में गति करती हुई प्रतीत होती हैं, ठीक इसी प्रकार सूर्य भी पृथ्वी का चक्कर लगाता प्रतीत होता है लेकिन सच तो यह है कि पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है। आर्यभट ने बताया कि चंद्र ग्रहण या सूर्य ग्रहण चंद्रमा अथवा सूर्य को राहु के ग्रसने के कारण नहीं बल्कि चंद्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने से अथवा सूर्य और पृथ्वी के बीच चंद्रमा के आ जाने से होता है। आर्यभट द्वारा निकाली गई वर्ष की अवधि (365.2586805 दिन) टालेमी द्वारा स्वीकृति अवधि (365.2631579 दिन) की अपेक्षा यथार्थ अवधि (365.2563604 दिन) के सन्निकट है। आर्यभट ने 121 श्लोकों वाले ग्रंथ आर्यभटीयम् में न जाने कितनी गूढ़ बातें देकर गागर में सागर को चरितार्थ किया है। आर्यभट द्वितीय, जिन्होंने 950 ई. में 'महासिद्धांत' की रचना की थी, का योग उतना महत्वपूर्ण नहीं है। इस ग्रंथ को 'आर्यसिद्धांत' भी कहते हैं। आर्यभट द्वितीय की चर्चा हम कालक्रमानुसार आगे करेंगे।

वराहमिहिर : फलित ज्योतिष के प्रणेता

वराहमिहिर आर्यभट के समकालीन थे। वराहमिहिर किस सन् में उत्पन्न हुए, इसका विवरण हमें नहीं मिलता लेकिन उन्होंने अपने ग्रंथ 'पंच सिद्धांतिका' में गणितारंभ वर्ष दिया है अर्थात् जिस वर्ष से उन्होंने अपनी गणनाएं प्रारंभ की और इस आधार पर इनके ग्रंथ का रचनाकाल ईस्वी सन् 505 आता है। वराहमिहिर की मृत्यु के वर्ष का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इनकी मृत्यु 587 ई. में हुई थी, इस प्रकार वराहमिहिर को छठीं शती का

ज्योतिषी कहना चाहिए। वराहमिहिर ने गणित ज्योतिष और फलित ज्योतिष (अंधविश्वासों पर आधारित मुहूर्त, योग आदि की विद्या) दोनों पर ग्रंथ रचे हैं। लेकिन इनके गणित ज्योतिष के ग्रंथ 'पंच सिद्धांतिका' का अधिक महत्व है। यदि वराह ने यह ग्रंथ न लिखा होता तो आज ज्योतिष शास्त्र का इतिहास अधूरा होता। वास्तव में यह ग्रंथ वराहमिहिर से प्राचीन तथा उनके समकालीन पांच ज्योतिष सिद्धांतों का संग्रह है। आज वे मूल सिद्धांत-ग्रंथ अप्राप्य हैं। पांचों ज्योतिष सिद्धांत - पितामह, वसिष्ठ, रोमक, पौलिश और सूर्य सिद्धांत में से केवल सूर्य सिद्धांत की पांडुलिपि व टीकाएं आज उपलब्ध हैं। अतः वराहमिहिर के इस कृत्य के लिए हमें उनका ऋणी होना चाहिए। वराहमिहिर स्वतंत्र ग्रंथ भी लिख सकते थे लेकिन उन्होंने पुराने सिद्धांतों का संपादन करना अधिक उचित समझा। कदाचित इसीलिए इतिहासकार अलबेरूनी ने वराहमिहिर को अत्यधिक आदर दिया है।

'पंचसिद्धांतिका' बहुत दिनों तक अप्राप्य थी परंतु प्रोफेसर वूलर ने बड़े श्रम के बाद इसकी दो प्रतियां खोज निकालीं, तत्पश्चात् डॉ. थीबो और पं. सुधाकर द्विवेदी ने 1889 में संस्कृत टीका सहित इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। प्राचीन काल में जिन ग्रंथों में ज्योतिष व गणित शास्त्र की आधारभूत बातें दी जाती थीं, उन्हें सिद्धांत-ग्रंथ कहा जाता था। वराह ने उस समय के प्रचलित पांचों सिद्धांतों को एक साथ कर दिया और यह भी लिखा कि कौन सिद्धांत कैसा है?वराह लिखते हैं - 'सूर्य सिद्धांत सबसे उत्तम है, उसके बाद रोमक और पौलिश लगभग समकक्ष हैं और शेष दो सिद्धांत इनसे बहुत हीन हैं।' पंचसिद्धांतिका में इनका विस्तार भी लगभग इसी क्रम में है। पितामह, वसिष्ठ और सौर (सूर्य) सिद्धांत तो अपने यहां के हैं लेकिन रोमक और पौलिश सिद्धांतों के नामों से ही पता लग जाता है कि ये यवन ज्योतिष से संबंधित थे। कुछ विद्वानों का मत है कि वराह ने स्वयं रोम, यूनान आदि पाश्चात्य देशों की यात्रा करके वहां की ज्योतिष का अपनी पंचसिद्धांतिका में समावेश किया लेकिन कुछ का मत यह भी है कि सिकंदर के आक्रमण के बाद ही यूनानी और भारतीय विद्वानों का संपर्क होने लगा था। अतः ज्ञान के आदान-प्रदान के क्रम में यहीं किसी यूनानी विद्वान से उन्हें इनकी जानकारी मिली हो। लेकिन इतना जरूर है कि भारतीय ज्योतिष की ध्वजाकीर्ति चारों ओर फैलने लगी थी। पंचसिद्धांतिका के अतिरिक्त वराह के अन्य ग्रंथ 'बृहज्जातक', 'लघुजातक', 'विवाह पटल' और 'योग यात्रा' आदि फलित ज्योतिष के ग्रंथ हैं। वराह की एक और बड़ी पोथी है - ''बृहत्संहिता' जो फलित ज्योतिष पर आधारित है। 'बृहत्संहिता' में वर्णित ज्योतिष की बातें अब महत्व की नहीं हैं। उसमें ज्योतिष के अतिरिक्त सामाजिक चित्रण, खेती-बाड़ी, राजा-प्रजा की स्थिति आदि का चित्रण है। अन्य ग्रंथ होरा शास्त्र अर्थात् जन्मकुंडली आदि बनाने की विद्या के ग्रंथ हैं।
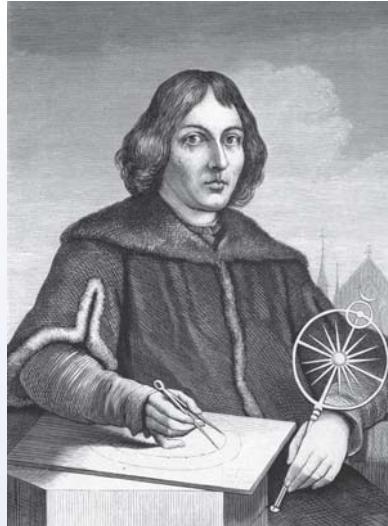
हम वराहमिहिर के सबसे अधिक ऋणी हैं तो उनकी 'पंचसिद्धांतिका' के लिए, जो ज्योतिष शास्त्र के इतिहास का अपूर्व ग्रंथ है। अलबेरूनी ने अपने ग्रंथ 'भारत वर्ष' में वराह को अत्यधिक आदर प्रदान करते हुए लिखा है - 'वराह के कथन सत्य पर आधारित हैं, परमेश्वर करे कि सभी बड़े लोग उसके आदर्श का पालन करें।' वराहमिहिर के 'बृहज्जातक' के एक श्लोक से पता चलता है कि इनके पिता का नाम आदित्यदास था। उन्होंने अपने पिता से ज्ञान भी प्राप्त किया था पर ये इनके ज्योतिष शास्त्र के गुरु नहीं थे। पंचसिद्धांतिका के प्रथमाध्याय की एक आर्ध से स्पष्ट होता है कि इनके गुरु इनके पिता से भिन्न थे। दूसरे स्थलों के कुछ विवरणों से ज्ञात होता है कि वे अवन्ती (उज्जयिनी) के निवासी थे। प्रायः अपने सभी ग्रंथों के आरंभ में मंगलाचरण में इन्होंने सूर्य की वंदना की है जिससे स्पष्ट है कि ये सूर्य के उपासक थे। कायित्थ नामक स्थान में सूर्यदेव को प्रसन्न करके इन्होंने वर प्राप्त किया था। संभवतः यह कपित्थ ग्राम है जो उज्जैन के निकट (आज भी) 'कायथा' नाम से विद्यमान है। इनका पुत्र पृथुयश था जिसकी रचना 'षट्पंचाशिका' सुप्रसिद्ध है।

ब्रह्मगुप्त : अरबों में भारतीय गणित के प्रसारक

आर्यभट और वराहमिहिर के बाद भारतीय गणितज्ञों एवं ज्योतिषियों में ब्रह्मगुप्त का नाम उल्लेखनीय है। भारत से बाहर सबसे अधिक प्रतिष्ठा इन्हीं को मिली है। कारण स्पष्ट है - अरबों को भारतीय गणित एवं ज्योतिष का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त के ही ग्रंथों से मिला। अलबेरूनी के आधार पर प्रो. साचो लिखते हैं - 'प्राच्य सुधार के इतिहास में ब्रह्मगुप्त का स्थान बहुत ऊंचा है। अरबवासियों को टालेमी के ग्रंथ का पता लगने से पूर्व उन्हें ब्रह्मगुप्त ने ज्योतिष शास्त्र सिखाया क्योंकि अरबी भाषा के इतिहास में 'अल् सिंद हिंद' और 'अल अरकंद' ग्रंथों के नाम बार-बार आते हैं और वे दोनों ब्रह्मगुप्त के 'बाह्य स्फुट सिद्धांत'

और 'खंड खाद्यक' के अनुवाद हैं। 'खंड खाद्यक' और 'ब्राह्म सिद्धांत' का अलबेरूनी ने अरबी में अनुवाद किया था। बेरूनी सिंध प्रांत में बहुत दिनों तक रहा। उसके लेखों में अनेक स्थलों पर स्पष्ट उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि उस समय सिंध प्रांत में ब्रह्मगुप्त के ग्रंथों का अधिक प्रचार था। ब्रह्मगुप्त का अनुवाद खलीफा मंसूर के समय में हुआ होगा, ऐसा समझा जाता है। ब्रह्मगुप्त का जन्म 598 ई. में हुआ था। उस समय भिन्नमाल उत्तर गुजरात की राजधानी थी, यह आधुनिक राजस्थान के जालौर जिले में भीनमाल गांव है। इसी स्थान के निवासी थे ब्रह्मगुप्त। उन्होंने 30 वर्ष की वय में (628 ई.) लिखा - 'ब्राह्म स्फुट सिद्धांत' और 67 की वय में 'खंड खाद्यक' की रचना की। आर्याछंदों में लिखित 'ब्राह्म स्फुट सिद्धांत' 24 अध्यायों में है जिसमें दो अध्याय गणित पर हैं और शेष ज्योतिष पर। दोनों अध्यायों में अंकगणित और ज्यामिति के अनेक सूत्र हैं। अंकगणित भाग में ब्रह्मगुप्त ने घनमूल, गणित की चार विधियां, वर्ग, घन, भिन्न अनुपात, त्रैराशिक, ब्याज, शून्य, अनंत आदि बहुत से प्रकरण दिए हैं। ब्रह्मगुप्त के काल में हिंदू गणित अपनी पराकाष्ठा पर थी लेकिन तमाम खूबियों के बावजूद ब्रह्मगुप्त में भ्रांतियां देखने को मिलती हैं। ब्रह्मगुप्त का यह लिखना कि शून्य को शून्य से भाग देने पर परिणाम शून्य होता है, भ्रामक है। हम भलीभांति जानते हैं कि परिणाम कुछ भी (अनिर्धार्य) हो सकता है। इसी प्रकार वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात के बारे में ब्रह्मगुप्त गलत थे। उन्होंने इस अनुपात का मूल्य 10 बताया है। आर्यभट ने इसी अनुपात के लिए इससे सूक्ष्म मान दिया था। आगे चलकर वृद्धावस्था में ब्रह्मगुप्त ने 'खंड-खाद्यक' नामक एक करण ग्रंथ की रचना की जिससे तिथि, नक्षत्र और ग्रहों की गणना सुगम रीति से की जा सके। यह ग्रंथ पंचांग बनाने की विधियों पर प्रकाश डालता है। आश्चर्य की बात है कि जिस ब्रह्मगुप्त ने 'बाह्मस्फुट सिद्धांत' में आर्यभट की अनेक स्थलों पर निंदा की थी, उसी ने अपने इस ग्रंथ को आर्यभट के अनुसार बनाया और आरंभ में लिखा - 'आर्यभट के समान फल देने वाला ग्रंथ बना रहा हूं।' प्रकट है कि इन्हें वृद्धावस्था में आर्यभट का महत्व प्रतीत हुआ।

आर्यभट द्वितीय : महासिद्धांत के प्रणेता

पांचवी शती के उद्भट गणितज्ञ एवं प्रख्यात खगोलज्ञ आर्यभट की चर्चा आरंभ में की जा चुकी है, चूंकि, आगे चलकर 10वीं शती में, इसी नाम के एक और ज्योतिर्विद् हुए हैं, अतः इन्हें हम 'आर्यभट द्वितीय' नाम से संबोधित करेंगे।
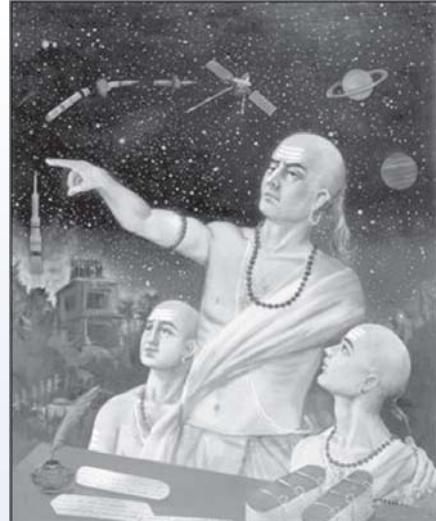
आर्यभट द्वितीय ने सिद्धांत ग्रंथ की रचना लगभग 950 ई. में की थी, जिसे 'महासिद्धांत' अथवा 'आर्यसिद्धांत' नाम से जाना जाता है। आर्यभट प्रथम ने 'आर्यभटीयम्' नामक जो अपना ग्रंथ रचा था, उसे भी कुछ समीक्षक 'आर्यसिद्धांत' नाम से विहित करते हैं, जो भ्रमकारक है।

यद्यपि इन्होंने कहीं भी अपने काल का उल्लेख नहीं किया है लेकिन डॉ. विभूति भूषण दत्त, डॉ. अवधेश नारायण सिंह और शंकर बाल कृष्ण दीक्षित प्रभृति विद्वानों का मत है कि इनका काल शक 872 के आस-पास का है जो कि ईस्वी सन् 950 आता है। इसी नाते इन्हें आर्यभट द्वितीय नाम से जाना जाता है।

आर्यभट द्वितीय प्रणीत 'महासिद्धांत' में 18 अधिकार और प्रायः 625 आर्या छंद हैं। प्रारंभिक 13 अध्याय वे ही हैं जो कि 'सूर्यसिद्धांत' और 'ब्राह्मस्फुट सिद्धांत' में वर्णित अध्याय हैं, मात्र दूसरे अध्याय का नाम 'पराशर मताध्याय' रखा गया है। 14वां अध्याय 'गोलाध्याय' है। इसके प्रथम 11 श्लोकों तक पाटी गणित (अंकगणित) के प्रश्न दिए गए हैं और 3 श्लोक भूगोल के प्रश्नों पर आधारित हैं तथा शेष 43 श्लोकों में अहर्गण और ग्रहों की मध्यम गति संबंधी प्रश्न दिए गए हैं। 15वें अध्याय में पाटी गणित, क्षेत्रफल, घनफल आदि विषयक 120 आर्याएं दी हुई हैं। 16वां अध्याय 'भुवनकोश-प्रश्नोत्तर' है, जिसमें भूगोल, खगोल, स्वर्गादि लोक वर्णित हैं। 17वें अध्याय का नाम 'प्रश्नोत्तर अध्याय' रखा गया है, जिसके वर्ण्य विषय ग्रहों की मध्य गति संबंधी प्रश्न आदि हैं। 18वां और अंतिम अध्याय कुट्टकाध्याय है। इसमें 'कुट्टक' (Pulvriser) संबंधी प्रश्न ब्रह्मगुप्त प्रणीत 'ब्राह्म-स्फुट सिद्धांत' की अपेक्षा कहीं अधिक सुविचारित हैं।

आर्यभट द्वितीय ने अंक लेखन की नई पद्धति अपने ग्रंथ में अपनाई है जो कि आर्यभट की पद्धति से भिन्न है। वर्णों के माध्यम से संख्याओं को प्रकट करने में आर्यभट प्रथम ने 'अंकानाम् वामतो गतिः' का अनुपालन किया है अर्थात् अंक दाहिनी ओर से बायीं ओर को लिखे जाते हैं लेकिन आर्यभट द्वितीय की पद्धति में संख्याएं सदा बायीं ओर से दाहिने ओर लिखी जाती हैं।

आर्यभट द्वितीय आविष्कृत नवीन अंक लेखन पद्धति 'क ट प या दि' पद्धति कहलाती है क्योंकि इसमें 1 के लिए क, ट, प, य अक्षर प्रयुक्त होते हैं। इसी तरह 2 के लिए ख, ठ, फ, र आदि। शून्य के लिए ञ और न प्रयुक्त किए जाते हैं। यथा :

क,	ट,	प,	य	त्र	1
ख,	ठ,	फ,	र	त्र	2
ग,	ड,	ब,	ल	त्र	3
घ,	ढ,	भ,	व	त्र	4
ङ,	ण	म,	श	त्र	5
च,	त,		ष	त्र	6
छ,	थ,		स	त्र	7
ज,	द,			त्र	8
झ,	ध,			त्र	9
ञ,	न,			त्र	0

इस पद्धति में संख्या लिखने के लिए अक्षरों को क्रमशः बायें से दाहिने ओर लिखते हैं, जैसे कि अंकों से संख्याएं प्रकट की जाती हैं। उदाहरण के लिए घ ड फ का तात्पर्य 432 से है। इसी तरह ज द प का अर्थ 881 से है।

स्वर और उनकी मात्राओं का इस पद्धति में कोई मूल्य नहीं है। मात्राओं के जोड़ने से भी अक्षर वही अर्थबोध देते हैं जैसा कि बिना मात्राओं के। मात्राएं केवल उच्चारण की सुविधा के लिए जोड़ी जाती है। उदाहरणार्थ क, का, कि, कू आदि सभी से 1 का ही अर्थबोध होता है।

इस पद्धति के अनुसार यदि हम आर्यभट प्रथम के उदाहरणों में से एक कल्प में सूर्य और चंद्रमा के भगण लिखें तो उनकी संख्या निम्नवत होगी। यथा :

1 कल्प में सूर्य के भगण — घडफेननेननुनीना 4320000000

1 कल्प में चंद्र के भगण — मथथमगग्लभननुना 57753334000

कहना न होगा कि अंक लेखन की यह पद्धति आर्यभट प्रथम की रीति से कहीं सुगम है और स्मरण करने में भी सरल प्रतीत होती हैं। लेखन और स्मरण दोनों दृष्टियों से यह पद्धति सरल है।

❑❑❑

डॉ. नागेन्द्र का शुकदेव प्रसाद के नाम पत्र
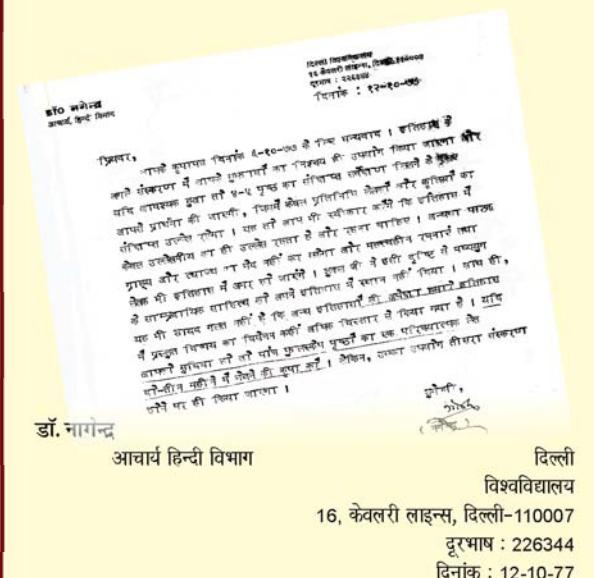
डॉ. नागेन्द्र
आचार्य हिन्दी विभाग

दिल्ली
विश्वविद्यालय
16, केवलरी लाइन्स, दिल्ली-110007
दूरभाष : 226344
दिनांक : 12-10-77

प्रियवर,

आपके कृपापत्र दिनांक 6-10-77 के लिए धन्यवाद। इतिहास के अगले संस्करण में आपके सुझावों का निश्चल ही उपयोग किया जाएगा और यदि आवश्यक हुआ तो 4-5 पृष्ठ का संक्षिप्त सर्वेक्षण लिखने के लिए आपसे प्रार्थना की जाएगी, जिसमें केवल प्रतिनिधि लेखकों और कृतियों का संक्षिप्त उल्लेख रहेगा। यह तो आप भी स्वीकार करेंगे कि इतिहास में केवल उल्लेखनीय का ही उल्लेख रहता है और रहना चाहिए। अन्यथा पाठक ग्राह्य और त्याज्य का भेद नहीं कर सकेगा और महत्वहीन रचनाएं तथा लेखक भी इतिहास में अमर हो जाएंगें। शुक्ल जी ने इसी दृष्टि से मध्ययुग के साम्प्रदायिक साहित्य को अपने इतिहास में स्थान नहीं दिया। साथ ही, यह भी शायद ग़लत नहीं है कि अन्य इतिहासों की अपेक्षा हमारे इतिहास में प्रस्तुत विषय का विवेचन कहीं अधिक विस्तार से किया गया है। यदि आपको सुविधा हो तो पाँच फुलस्केप पृष्ठों का एक परिचयात्मक लेख दो-तीन महीने में भेजने की कृपा करें। लेकिन, उसका उपयोग तीसरा संस्करण होने पर ही किया जाएगा।

शुभैषी
(नगेन्द्र)

श्री शुकदेव प्रसाद,
सहायक सम्पादक 'विज्ञान'
विज्ञान परिषद्,
महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद (उ.प्र.)

महर्षि कणाद और उनका परमाणु दर्शन

पदार्थ के परमाणुवीय संगठन की परिकल्पना का श्रेय 19वीं शती के वैज्ञानिक जॉन डाल्टन को है जिनके अनुसार तत्व का अत्यन्त सूक्ष्म तथा अविभाज्य कण परमाणु कहलाता है। हर तत्व के परमाणु एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं। यह धारणा लगभग 100 वर्षों तक रसायन शास्त्र का आधार थी। आज यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है परमाणु और कई मौलिक कणों से निर्मित हैं जिनमें इलेक्ट्रॉन, पोट्रॉन और न्यूट्रॉन प्रमुख हैं। हालांकि परमाणु के स्वरूप की यह धारणा बीसवीं शती में पनपी है लेकिन मोटे तौर पर पदार्थ की संरचना सम्बन्धी जो व्याख्या अभी तक प्रचलित थी, उसका स्पष्ट विवेचन भारतीय मनीषी एवं दार्शनिक कणाद के वैशेषिक दर्शन में सन्निहित है। वैशेषिक के प्रणेता आचार्य कणाद का नाम परमाणुवाद के संदर्भ में चिर ऐतिहासिक है। कणाद उलूक मुनि के पुत्र थे और ईसा पूर्व छठी शताब्दी में प्रयाग के प्रभास नामक स्थान पर रहते थे। कणाद को औलुक्य और कश्यप नाम से भी जाना जाता है। कणाद साधु प्रकृति के व्यक्ति थे और सड़कों से अन्न एकत्र करके भरण-पोषण करते थे। अतः इसी नाते उनका नाम 'कणाद' अर्थात 'कणों से पेट भरने वाला' पड़ा। पौराणिक आख्यानों के अनुसार उन्होंने कष्ट उठाकर सर्वज्ञ भगवान शिव को प्रसन्न किया तो शिव ने उन्हें संघटकों के बारे में ज्ञान प्रदान किया जिससे इस ब्रह्मांड का निर्माण हुआ है। शिव के ही आदेश से उन्होंने वैशेषिक सूत्रों की रचना की। उक्त कृति वैशेषिक दर्शन की सर्वप्रथम क्रमबद्ध कृति है।

वैशेषिक और न्यास दोनों दर्शनों में किस दर्शन की रचना पहले हुई, यह कहना कठिन है लेकिन दोनों दर्शनों में पर्याप्त साम्य है। दोनों दर्शनों में कई सूत्र एक से हैं। दोनों दर्शन परमाणुवादी हैं। यद्यपि दोनों की अपनी मौलिक विशेषताएं हैं पर वे एक दूसरे की पूरक हैं। जो समानता योग और सांख्य में है, वही न्याय और वैशेषिक में है। भारतीय दर्शन में कणाद ही प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने परमाणु की संकल्पना दी थी। परमाणु सिद्धान्त ब्रह्मांड में यथार्थ वस्तुओं के विद्यमान रहने के सिद्धांत पर आधारित था। इस सिद्धांत का समर्थन न्याय के प्रणेता गौतम ने भी किया है जो कणाद के समकालीन थे। कालांतर में परमाणु सिद्धांत के विकास में न्याय-वैशेषिक दर्शन की सहभागिता हुई।

अणु या परमाणु की कल्पना

अणु शब्द का प्रयोग वैशेषिक में कई स्थलों पर हुआ है लेकिन वैशेषिक में सर्वत्र यह संदेह विद्यमान है कि अणु शब्द का प्रयोग 'अतिसूक्ष्म' के अर्थ में हुआ है अथवा परमाणुओं के अर्थ में। प्रशस्तपाद भाष्य में पृथिवी, अप, तेज और वायु-चारों को दो प्रकार का बताया गया है। एक तो परमाणु अवस्था वाले जो नित्य हैं और दूसरे कार्य लक्षण वाले जो अनित्य है। पृथिवी के दो भेद हैं - नित्य और अनित्य। परमाणु रूप पृथिवी नित्य है और कार्य रूपी पृथिवी अर्थात् परमाणु भिन्न (द्वयाणुकादि रुप) पृथिवी अनित्य है। दो परमाणुओं

के मिलने से द्वयणुक बनता है और तीन द्वयणुक मिलकर एक त्रसरेणु बनता है। त्रसरेणु का ही नाम न्याय में त्रुटि है। जब पृथिवी परमाणु रूप में होती है अथवा द्वयणुक रुप में तब यह प्रत्यक्ष नहीं होती। लेकिन जैसे ही त्रसरेणु बनती है, इसमें दृश्यता आ जाती है।

अणु अथवा परमाणु के गुण

वैशेषिक में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि परमाणु आँखों से नहीं दिखाई पड़ते। लेकिन आँखों से प्रत्यक्ष न होने का तात्पर्य यह नहीं है कि इनका अस्तित्व नहीं है। आँखों में परमाणु इस नाते नहीं दिखाई पड़ते क्योंकि इनका परिमाण (Magnitude) नहीं है। अंधेरे कमरे में सूर्य की किरण जब प्रविष्ट होती है तब उसके मार्ग में जो सूक्ष्म धूलि कण दिखाई पड़ते हैं, गौतम के न्याय में उन्हें त्रुटि कहा गया है। परमाणु अथवा अणु इस त्रुटि अथवा त्रसरेणु से भी सूक्ष्म हैं। परमाणु निरवयव और द्वयणुक तथा त्रसरेणु सावयव हैं। त्रसरेणु आंखों से दृश्य हैं क्योकि उनमें परिमाण है। परिमाण है अतः इसके खंड हो सकते हैं। त्रसरेणु के खंड द्वयणुक हैं। द्वयणुक जिससे निर्मित हैं, वह अणु अथवा परमाणु है। जो भी द्रव्य कार्यावस्था में होगा, वह सावयव होगा। खंड करते-करते जहाँ कार्यावस्था समाप्त हो जाती है, वहाँ सावयवता भी समाप्त हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि परमाणु निरवयव हैं। चूंकि द्वयणुक और त्रसरेणु कार्यावस्था में है, अतः ये सावयव हैं। वैशेषिक के अनुसार कारण में जो गुण हैं, वे कार्य में अवश्यंभावी हैं। तात्पर्य यह है कि यदि कार्य रूप पृथिवी में गंध है तो यह गुण पृथिवी के परमाणु में भी निहित है। इसी प्रकार जल के परमाणु में रस, अग्नि के परमाणु में रूप और वायु के परमाणु में स्पर्श संबंधी गुण विद्यमान हैं। यदि ये गुण परमाणु में न होते तो कार्यावस्था वाले द्रव्य में भी नहीं होते। इस कथन में यह भी अभिप्रेत है कि पृथिवी के परमाणु जल के परमाणु से भिन्न हैं तथा अग्नि और वायु के परमाणु अन्य द्रव्यों के परमाणुओं से सर्वथा भिन्न हैं। वैशेषिक में परमाणुओं के जो गुण या लक्षण बताए गए हैं, वे इस प्रकार हैं :

- परमाणु नित्य और अखंड हैं।
- वे स्वतः कुछ उत्पन्न नहीं कर सकते अन्यथा उनका नित्य स्वरूप निरंतर उत्पत्ति का हेतु बन जायेगा।
- चारों तरह के परमाणुओं में से प्रत्येक अपने-अपने विशिष्ट गुण अर्थात, गंध, स्पर्श, रस और रूप रखता है। अर्थात् पृथिवी के परमाणु में गंध, वायु के परमाणु में स्पर्श, जल के परमाणु में रस और तेज के परमाणु में रूप निहित है।
- उनको प्रत्यक्ष ज्ञान कराने वाली किसी इन्द्रिय से नहीं देखा जा सकता है। पर इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि ज्ञानेन्द्रियां परमाणुओं के संपर्क में नहीं आतीं क्योंकि योगी उनका प्रत्यक्ष करते हैं। योगी बिना मन और इंद्रियों के अपनी आत्मचेतनता के कारण ही परात्मा, स्वात्मा, मन, परमाणु आदि सबका प्रत्यक्ष कर लेते हैं और इस प्रत्यक्ष में उन्हें इंद्रियों की अपेक्षा नहीं रहती। सर्व साधारण के लिए परमाणु दर्शन असंभव है।
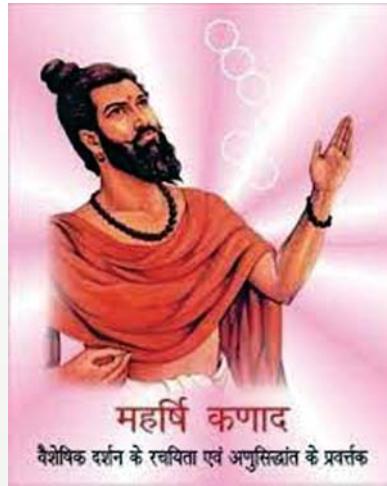
परमाणुओं में क्रियाएँ

इस परिवर्तनशील विश्व में जो भी परिवर्तन होते हैं, वे कर्म या क्रिया के कारण होते हैं। न्याय और वैशेषिक दोनों की मान्यता है कि कर्म या क्रिया के लिए प्रेरणा बाहर से मिलनी अपरिहार्य है। परमाणुओं में जो भी कुछ कर्म या गति है, वह चेतन सत्ता द्वारा प्रदत्त है। इस कर्म या गति को प्राप्त करके परमाणु परस्पर संयोग करते हैं और सृष्टि रचना आरम्भ हो जाती है। परमाणुओं से द्वयणुक और त्रसरेणु और अंततः बड़े-बड़े पिंड निर्मित होने लगते हैं। इसी प्रकार महाप्रलय अथवा क्षुद्र प्रलयों में बड़े-बड़े पिंड कर्म या क्रिया द्वारा विभक्त होकर परमाणु में परिवर्तित हो जाते हैं। इस समय परमाणु परस्पर इतने दूर रहते हैं कि उनमें संयोग सम्भव नहीं है। उदयनाचार्य कृत किरणावली में स्पष्ट कहा गया है कि पृथिवी का एक परमाणु पृथिवी के ही दूसरे परमाणु से संयुक्त होकर पृथिवी का द्वयणुक बनायेगा। इसी भांति जल के दो परमाणु परस्पर संयोग कर जल का द्वयणुक बनायेंगे। अग्नि और वायु के द्वयणुकों के लिए भी यही सत्य है। यह असंभव है कि ऐसा कोई द्वयणुक बने जिसमें एक परमाणु पृथिवी का हो और दूसरा जल और अग्नि आदि का। दो सजातीय परमाणु ही मिलकर द्वयणुक बनायेंगे, विजातीय परमाणुओं से द्वयणुक नहीं बनेगा। जिस तत्व से द्वयणुक बना है, उसका ही गुण उसमें रह सकता है। एक द्वयणुक में पृथिवी का गुण गंध भी हो और जल का गुण रस भी, यह दोनों सम्भव नहीं है। रासायनिक प्रक्रिया को वैशेषिक की शब्दावली में 'पाक' कहा गया है। वैशेषिक में पाक और रासायनिक प्रक्रियाओं की विशद मीमांसा की गई है। निष्कर्षतः हम यही कह सकते हैं कि कणाद के परमाणु दर्शन में द्रव्य की संकल्पना की विशद व्याख्या प्रस्तुत की गई है जो आधुनिक रसायन विज्ञान की संकल्पनाओं से पर्याप्त तादात्म्य रखती है।

❑❑❑

मध्यकालीन भारत : भारतीय विज्ञान का अंधयुग

भारतीय इतिहास के दर्पण में जब हम झाँकते हैं तो इस काल खंड में हम अपने को ऐसे मोड़ पर पाते हैं जो संस्कृतियों के आदान-प्रदान का युग था, इस काल खंड में वैज्ञानिक और औद्योगिक ज्ञान का आदान-प्रदान अवश्य हुआ पर मौलिक संधानों और नवोन्मेषों की परम्परा लुप्त होती चली गई और अंधेरे का कुहासा छटा कहीं 20 वीं शती के पूर्वार्द्ध में जाकर जब 1921 में सैंधव सभ्यता उद्घाटित हुई और तभी हम भारतीयों को अपनी विशाल सांस्कृतिक और वैज्ञानिक परंपराओं का ज्ञान और भान हुआ, अन्यथा हम अंधेरे में पड़े थे और अपनी विशाल वैज्ञानिक थाती और परंपराओं को विस्मृति के गर्भ में दफन कर चुके थे। इसी नाते 12वीं शती के पश्चात विदेशी आक्रांताओं के युग की संधि रेखा और इसमें विस्तृत काल खंड भारतीय विज्ञान का अंधयुग (Dark Age) रहा है। भला हो उन पाश्चात्य विद्वानों और पर्यटकों का जिन्होंने भारतीय विज्ञान में हम भारतीयों से कहीं अधिक दिलचस्पी ली और नाना तथ्य उद्घाटित किए, नाना संस्कृत की पोथियों का उद्धार किया और अनूदित होकर भारतीय ज्ञान-विज्ञान की हमारी थाती जब पश्चिम में पहुँची और प्रसरित हुई तो पाश्चात्य जगत विस्मित और विमुग्ध हो उठा। हम मैक्समूलर, जॉन मार्शल, सर विलियम जोन्स, प्रिंसेप जार्ज, मैकडानल, हैल्सटेड, कोलब्रुक, स्ट्रेची, टेलर, स्मिथ, अलबेरूनी प्रभृति इतर भारतीयों के चिर ऋणी हैं जिन्होंने हमारे सदियों पूर्व के दबे पड़े वैज्ञानिक इतिहास के पन्नों की धूल झाड़ी और भावी पीढ़ियों और संसार के लिए नए प्रतिमान दिए। इन भारत विद्या विशारदों की अटूट निष्ठा से ही हम अपने अतीत में झाँक सके हैं और अपनी वैज्ञानिक विरासत पर नाज कर सकते हैं।

बारहवीं शती में मुगल आक्रमण के बाद भारत की पुरातन संस्कृति और वैज्ञानिक ज्ञान भारत के कुछ ही हिस्सों महाराष्ट्र, गुजरात और दक्षिण भारत में सिमट कर रह गया। इतना अवश्य हुआ कि भारतीय ग्रंथों का चीनी, तिब्बती, अरबी और फारसी भाषाओं में अनुवाद हुआ और भारतीयों द्वारा अर्जित ज्ञान विदेशों में पहुँचा। जब बगदाद अरबी विद्या का केंद्र बना तो भारी संख्या में भारतीय ग्रंथों का अरबी में संस्कार हुआ। निस्संदेह गणित, खगोल, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी और दर्शन विषयक इन भारतीय ग्रन्थों ने इस्लामी शिक्षा और विचार पर व्यापक प्रभाव डाला। आगे चलकर अरब, फारस और मध्य एशिया के लोग भारत आये और यहां पर स्थापित हो गए। अपने साथ इन्होंने विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान का भारत में प्रसार भी किया और इस काल में उनका भारतीय जीवन पर प्रभाव भी पड़ा।

भारत गृह कलह और विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण से जब आक्रांत था तो यूरोप में विज्ञान का पुनर्जागरण हो रहा था। कोपरनिकस (1473-1543) ने टालेमी के भू-केंद्रिक सिद्धान्त (धरती ब्रह्मांड का केंद्र है और सूर्य उसका चक्कर लगाता है) के विरुद्ध आवाज उठायी। 1540 में उसने टालेमी के सिद्धान्त के उल्टे, अपने सूर्य केंद्रिक सिद्धान्त को 'डि रिवोल्यूशनिबस आरबियम कोएलिस्टियम' शीर्षक से लिपिबद्ध किया। चूंकि ये बातें बाइबिल के खिलाफ थीं, अतः निकोलस कोपरनिकस की पुस्तक बैन कर दी गई, कोपरनिकस की खुलेआम चर्चा करना भी अपराध माना जाता था। अपनी तरफ से कोपरनिकस के विचारों की पूरा हत्या करने तथा उसे काल के गाल में पूरी तरह डुबो देने का प्रयास पादरियों ने किया पर कोपरनिकस के विचारों को जिंदा किया युवा खगोलज्ञ जोर्डेनो ब्रूनो ने, जिसे रोम में 17 फरवरी, 1600 को जिंदा जला दिया गया। धर्म के ठेकेदारों ने कैसा अनूठा पुरस्कार दिया वैज्ञानिक खोज का! लेकिन एक बार ज्ञान की जो दीप शिखा प्रज्ज्वलित हो चुकी थी, उसे निरंतर जलना ही था, तूफानों और झंझावातों से कतई

अप्रभावित यह मशाल अविराम जलती रही। फिर भी कोपरनिकस के विचारों को पूर्ण स्वीकृति मिलने के लिए टाइको ब्राहे, ब्रूनो, गैलीलियो और जह्न केप्लर तथा आइजक न्यूटन जैसी महान प्रतिभाओं के योग के लिए, इतिहास को 200 वर्षों की लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी तब कहीं जाकर अंधविश्वासी मान्यताएँ ध्वस्त हुईं और विशुद्ध विज्ञान का उदय हुआ और उसे मान्यता मिली। भारत भूमि में कभी भी ऐसा नहीं हुआ, यह भारतीयों की उदात्त भावना का प्रतीक है। लेकिन पश्चिम में जब-जब विज्ञान ने धर्म के विरुद्ध आवाज उठाई, अंधविश्वासों पर कटाक्ष किया तो एक वितंडा उठ खड़ा हुआ फिर भी यूरोप में वैज्ञानिक पुनर्जागरण का उत्स हो चुका था और नए-नए उद्यम और उपक्रम आविष्कारों की बाट जोह रहे थे और कुल मिलाकर 'औद्योगिक क्रांति' का बिगुल बज चुका था। उन दिनों इंग्लैंड में खानों से पानी निकालने की समस्या बड़ी विकट थी, पानी निकालने के लिए 500 घोड़ों के रहट तक चलाये जाते थे। पानी भर जाने के कारण बहुत सी खानें बंद भी हो गईं। अतः खानों के मालिक ऐसे साधनों की खोज में थे जिससे आसानी से खानों का पानी उलीचा जा सके। ऐसे ही समय वोर्सेस्टर ने (1665) ने अपना वाष्प इंजन बनाया, अतः स्वाभाविक था कि उसका इंजन खान मालिकों में लोकप्रिय हो जाये और ऐसा हुआ भी पर इसमें और सुधार की आवश्यकता थी।

सन 1707 में फ्रांसीसी इंजीनियर डेनिस पेपिन ने वाष्प चालित नौका बनाई। यह अलग बात है कि उसके प्रयासों को जन सहयोग नहीं मिला। पेपिन के बाद सेवरी (1698) और टामस न्यूकोमेन (1712) ने वोर्सेस्टर के इंजन में कई सुधार किये और अपने भाप इंजन बनाए। न्यूकामेन ने पहली बार अपने इंजन में पिस्टन का प्रयोग किया। पर जेम्सवाट (1774) ने जो भाप इंजन बनाया, उससे ही वाष्प इंजन की असली शुरुआत मानी जाती है। उसने अपने इंजन को दोहरी क्रिया वाला (Double Acting) बनाया और 'क्रैंक और शैफ्ट' का प्रयोग करके इंजन को इस लायक बना दिया कि पिस्टन सीधी गति की जगह गोलाई में गति कर सके।

इंजन का वास्तविक प्रारूप, जिसकी मदद से रेलगाड़ियां अस्तित्व में आईं, बनाने में कग्नाट, मरडक, ट्रेविथिक आदि सफलता न प्राप्त कर सके पर इन सबके मिले-जुले प्रयासों से ही आगे का मार्ग प्रशस्त हुआ और जार्ज स्टीफेंसन नामक एक अंग्रेज ने भाप चालित पहली रेलगाड़ी (1830) बनायी और रेलगाड़ी के जनक होने का श्रेय स्टीफेंसन को मिला। आगे चलकर जर्मनी के डॉ. निकोलस आटो ने (1876) पेट्रोल इंजन का आविष्कार किया और जर्मनी के ही रुडोल्फ डीजल ने (1893) डीजल इंजन का आविष्कार किया।

पर खेद का प्रकरण यह है कि भारतीय वैज्ञानिक पुनर्जागरण की छाया माया से कोसों दूर था, यूरोप में नए-नए विज्ञानों का जो उदय हो रहा था, भारत को उसका संस्पर्श नहीं मिला क्योंकि भारतीय इतिहास का यह काल खंड कदाचित भारत के प्रतिकूल था और इसी नाते भारत वैज्ञानिक पुनर्जागरण में सम्मिलित न हो सका और आधुनिक विज्ञान के अग्रगण्य राष्ट्रों में पांक्तेय न हो सका। कारण स्पष्ट है। मुगलों के पश्चात भारत भूमि में पुर्तगालियों, डचों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों का पर्दापण हुआ जिन्होंने अपार जन-धन की ही क्षति नहीं पहुँचायी अपितु हमारी परंपराओं का भी ध्वंस किया, वैज्ञानिक ज्ञान की थातियों, विद्यापीठों को भी क्षत-विक्षत कर दिया और इन सभी का समेकित परिणाम यह रहा कि हमारा वैज्ञानिक अतीत धूल-धूसरित हो गया।

भारतीय वैज्ञानिक पुनर्जागरण की छाया माया से कोसों दूर था, यूरोप में नए-नए विज्ञानों का जो उदय हो रहा था, भारत को उसका संस्पर्श नहीं मिला क्योंकि भारतीय इतिहास का यह काल खंड कदाचित भारत के प्रतिकूल था और इसी नाते भारत वैज्ञानिक पुनर्जागरण में सम्मिलित न हो सका और आधुनिक विज्ञान के अग्रगण्य राष्ट्रों में पांक्तेय न हो सका। कारण स्पष्ट है। मुगलों के पश्चात भारत भूमि में पुर्तगालियों, डचों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों का पर्दापण हुआ जिन्होंने अपार जन-धन की ही क्षति नहीं पहुँचायी अपितु हमारी परंपराओं का भी ध्वंस किया, वैज्ञानिक ज्ञान की थातियों, विद्यापीठों को भी क्षत-विक्षत कर दिया और इन सभी का समेकित परिणाम यह रहा कि हमारा वैज्ञानिक अतीत धूल-धूसरित हो गया।

फिर भी कुछेक विभूतियों ने भारतीय ज्ञान-विज्ञान की दीप शिखा प्रज्ज्वलित रखी। भारतीय विज्ञान के इस अंध युग में सवाई राजा जय सिंह द्वितीय एक ऐसा नाम है जिसने भारतीय खगोल विज्ञान का फिर से श्रीगणेश किया, वेध की पुरातन परंपराओं की नई परिपाटी डाली। जय सिंह द्वितीय का जन्म 1686 ई. में हुआ था। इसी वर्ष न्यूटन का महान ग्रंथ 'प्रिंसीप्रिया' प्रकाशित हुआ। जय सिंह ने पाँच वेधशालाएँ स्थापित की और ग्रहों की सूक्ष्म से सूक्ष्म गति के निर्धारण के लिए वेध यंत्र (Astrolab) बनवाए। इस प्रकार हम देखते हैं कि जय सिंह भारतीय विज्ञान के मध्यकाल का एक ज्याजल्यमान नक्षत्र हैं। उसकी खगोल विज्ञान के अति अटूट निष्ठा ने इस अंधयुग को प्रदीप्त किया।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मध्य काल में यद्यपि बहुत उल्लेखनीय कार्य तो नहीं हुए लेकिन कुछेक कार्य हुए हैं जो उल्लेख की मांग करते हैं। जिनकी चर्चा हम अगले अंकों में करेंगें।

❑❑❑

भारतीय विज्ञान का पुनर्जागरण
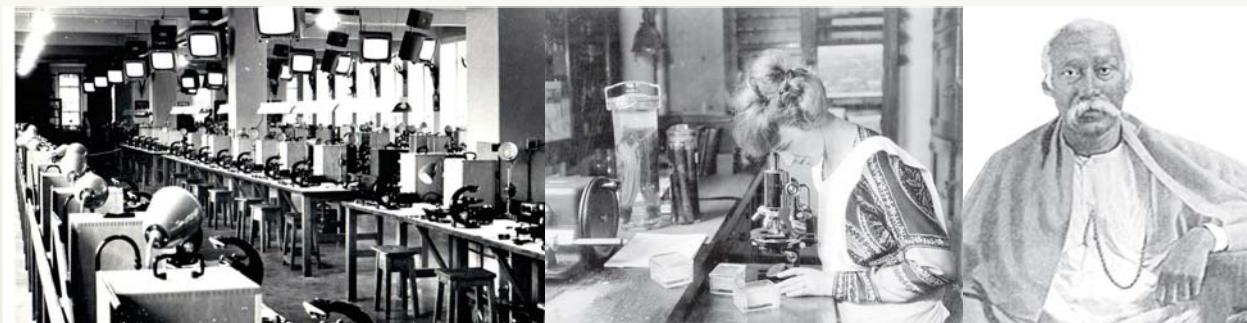
अंग्रेजों ने साधारण व्यावसायिकों की हैसियत से भारत भूमि में अपने कदम रखे लेकिन अपनी कूटनीतिक चालों से वे यहाँ के सर्वेसर्वा बन बैठे। अपने साम्राज्य के विस्तार के बाद उन्होंने हमारा दमन, उत्पीड़न और शोषण आरम्भ किया। चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो या राजनीति और विज्ञान का, सभी में हम भारतीयों के साथ भेद-भाव की नीति बरती जाती और अच्छे पदों पर भारतीयों को बैठने ही नहीं दिया जाता। यहाँ पर उन्होंने उन्हीं उद्योगों को पनपने दिया, जो इंग्लैंड में उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति कर सकें। अपनी आवश्यकताओं के लिए उन्होंने अनुसंधानों पर बल दिया और इस तरह भावी वैज्ञानिक परिदृश्य की आधारशिला निर्मित हुई। साहस के धनी कुछेक भारतीयों ने अपनी निजी अभिरुचि से विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में ठोस कार्य किए जिन्होंने भावी अनुसंधानों का मार्ग प्रशस्त किया और वैज्ञानिक भारत के निर्माण में ये सारे प्रयास सहायक हुए। आजादी के बाद इनका विस्तार किया गया और फलस्वरूप तेजी से भारतीय वैज्ञानिक विकास की ओर अभिमुख हुआ। इस कालखंड को हम अंधयुग के बाद 'भारतीय विज्ञान का पुनर्जागरण काल' भी कह सकते हैं।

एशियाटिक सोसायटी की स्थापना

28 सितम्बर, 1746 को लंदन में जन्में सर विलियम जोन्स 1783 में कलकत्ते (अब कोलकाता) के उच्चतम न्यायालय के एक अवर न्यायाधीश के रूप में भारत आये। उन्होंने भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार के किए जितना कार्य किया, उतना किसी और अंग्रेज ने नहीं किया। उनकी प्राच्य विद्या में इतनी गहन अभिरुचि थी कि यहाँ के मूल ग्रंथों के अध्ययन और संस्कृति से गहन रूप से सम्पृक्तता के लिए उन्होंने संस्कृत सीखी। सर विलियम जोन्स की पहल पर 15 जनवरी, 1784 को यूरोपीय समाज के 30 विशिष्ट व्यक्तियों ने एशियाटिक सोसायटी की स्थापना का प्रस्ताव पारित किया। सर जोन्स की धारणा थी कि भारत को विश्व को विज्ञान तथा कला के क्षेत्र बहुत कुछ देना है। 1784 में स्थापित एशियाटिक सोसायटी संसार भर की तमाम एशियाई और प्राच्य विद्या सोसायटियों की मातृ संस्था बन गई और इससे अभिप्रेरित होकर नाना संस्थाओं और विद्वानों ने भारत की महान परम्पराओं को प्रकाश में लाने का भगीरथ प्रयास किया, जिसके पीछे प्रेरक की भूमिका निस्संदेह सर विलियम जोन्स (1746-1794) की थी।

सर विलियम जोन्स सोसायटी के प्रथम अध्यक्ष थे। आपके ही प्रयास से 1766 में इंडियन म्यूजियम ऑफ कलकत्ता की स्थापना हुई। सोसायटी ने 1788 में 'एशियाटिक रिसर्चेज' नामक जरनल का प्रकाशन आरम्भ किया और इसमें भौतिकी, रसायन, भू-विज्ञान और चिकित्सा विषयक शोध पत्र प्रकाशित किए जाते थे। आगे चल कर और भी संस्थाओं ने ऐसे जरनलों का प्रकाशन आरम्भ किया और इस तरह भारतीय शोधें देशी पीरियाडिकल्स में छपने लगीं तथा भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान का वातावरण शनैः शनैः बनने लगा। भारत में वानस्पतिक सर्वेक्षण का कार्य सर जोन्स ने ही आरंभ किया। उन्होंने "Botanical Observations on Select Plants" शीर्षक से एक ग्रंथ प्रस्तुत किया तथा आगे चलकर (1874) काक्स वर्ग ने 'फ्लोरा इंडिका' जैसा विस्तृत ग्रंथ रचा, जिससे भारतीय वनस्पति जातों

(Flora) का सम्पूर्ण विवरण प्राप्त किया जा सकता है। वनस्पति विज्ञान ही नहीं, दर्शन, खगोल और जीव विज्ञान के विविध पक्षों पर जोन्स ने अपनी लेखनी चलायी और हमारे ज्ञान भंडार में अभिवृद्धि की।
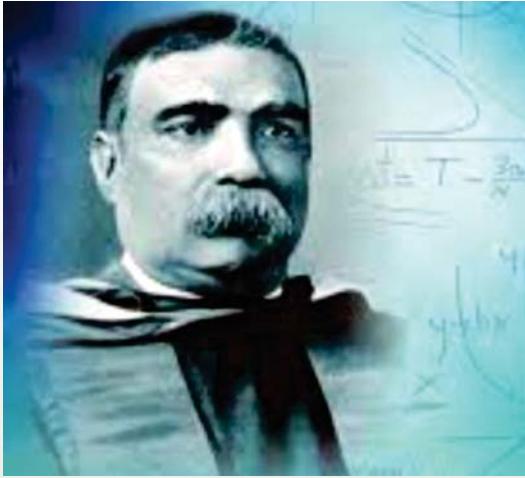
आशुतोष

नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज, इंडिया (नासी)

1930 में इलाहाबाद मे स्थापित नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज, इंडिया देश की सबसे पुरानी अकादमी है। अकादमी की स्थापना देशी अनुसंधानों के प्रसार के उद्देश्य से की गई थी। अकादमी के स्मरण-पत्र पर देश के तत्कालीन 7 लब्ध प्रतिष्ठ वैज्ञानिकों ने हस्ताक्षर किए थे -प्रो.मेघनाद साहा, प्रो.के.एन.बहल, प्रो.डी.आर.भट्टाचार्य, प्रो.पी.सी. मैकमोहन, प्रो.ए.सी.बनर्जी, प्रो.चौधरी वली मोहम्मद और प्रो.नील रतन धर। रॉयल सोसायटी ऑफ इंग्लैंड तथा बंगाल एशियाटिक सोसायटी के पैटर्न पर अकादमी की नियमावली तैयार की गई थी। प्रो.मेघनाद साहा नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज के प्रथम अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। अकादमी का प्रधान कार्यालय 5 लाजपत राय मार्ग, इलाहाबाद स्थित अपने निजी भवन में है। इसके निर्माण के निमित्त भूखंड प्रो. एन.आर.धर ने सहर्ष प्रदान किया था। अकादमी की ओर से 'प्रोसीडिंग्स ऑफ नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज' (भौतिक विज्ञान) और 'प्रोसीडिंग्स ऑफ नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज' (जैव विज्ञान) नामक जरनलों का नियमित रूप से त्रैमासिक प्रकाशन होता है।

'नेशनल एकेडमी साइंस लेटर्स' नाम से एक मासिक का भी प्रकाशन अकादमी करती है जिससे कि शोध कार्यों का द्रुत गति से प्रसार हो सके।

वैज्ञानिक समितियाँ

19वीं शती के पूर्वार्द्ध में नाना वैज्ञानिक समितियाँ गठित की गईं; जिसमें अनुसंधान कार्य आरम्भ हुए। आज ये समितियाँ देश की शीर्ष वैज्ञानिक संस्थाएँ बन चुकी हैं। 1821 में 'एग्रीकल्चरल सोसायटी ऑफ इंडिया' की स्थापना हुई, जिसे बाद में 'एग्रीकल्चरल एंड हार्टीकल्चरल सोसायटी' तथा अंततः 'रॉयल एग्री-हार्टीकल्चरल सोसायटी' कहा जाने लगा। 1833 में 'मद्रास लिटरेरी सोसायटी' अस्तित्व में आयी, जिसने 'मद्रास जरनल ऑफ लिटरेचर एंड साइंस' का प्रकाशन आरंभ किया। 1876 में कलकत्ते में डॉ. महेन्द्र लाल सरकार ने 'इंडियन एसोसिएशन फॉर दि कल्टीवेशन ऑफ साइंस' नामक संस्था गठित की। इसमें वैज्ञानिक शोध का खासा माहौल था तथा सुव्यवस्थित प्रयोगशाला की भी स्थापना इसमें की गई थी। शीघ्र ही वह संस्थान वैज्ञानिक अनुसंधान का प्रमुख केन्द्र बन गया और देश के कार्यरत वैज्ञानिकों को इसने अपनी ओर आकर्षित किया। सर सी.वी.रामन्, जब वे कलकत्ते में एकाउंटेंट जनरल के पद पर आसीन थे, ने भी इस प्रयोगशाला में कार्य किया था और कलकत्ते में रहने के लिए बो बाजार स्ट्रीट स्थित उक्त प्रयोगशाला उनके लिए आकर्षण का केंद्र थी। यहाँ पर रामन् ने जो प्रयोग आरम्भ किए, उन्हीं पर आगे चलकर (1930) उन्हें नोबेल पारितोषिक भी मिला। 1833 में बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी गठित हुई। देश की प्रकृति विज्ञान की यह शीर्ष संस्था आज भी समूचे विश्व में अपना महत्व रखती है, जिससे सम्बद्ध होकर और अन्वेषण कार्य करके डॉ. सालिम अली ने अन्तर्राष्ट्रीय यशस्विता अर्जित की। तब देश में किसी भी विश्वविद्यालय में प्रकृति विज्ञान का न तो कोई पाठ्यक्रम था और न ही जीव विज्ञान का कोई संग्रहालय ही। बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी ने जैव सर्वेक्षण का कार्य आरम्भ किया जो कि देश में ऐसे अध्ययनों की परिपाटी के शुभारम्भ का मूल बन गया और आज ऐसी कई संस्थाएँ कार्यरत हैं।

1907 में वी.रंगास्वामी अय्यर, के प्रयत्न से इंडियन मैथेमेटिकल सोसायटी स्थापित हुई। इसका मुख्यालय फर्ग्युसन कालेज, पुणे में था। शीघ्र ही इसने अपना नाम बदल कर इंडियन मैथेमेटिकल क्लब कर लिया लेकिन 1911 में इसने पुनः अपना नाम बदलकर इंडियन मैथेमेटिकल सोसायटी कर लिया। इसने 'जरनल ऑफ मैथेमेटिकल सोसायटी' का प्रकाशन भी आरम्भ किया जिसमें गणित के क्षेत्र के मौलिक अभिपत्र प्रकाशित होते थे। कलकत्ता उच्च्य न्यायालय के प्रमुख न्यायाधीश और कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी ने अपने गणित प्रेम के कारण 1908 में कलकत्ता मैथेमेटिकल सोसायटी की स्थापना की। गणित की सभी शाखाओं में मौलिक शोधों को प्रोत्साहित करने, अनुसंधान की प्रवृत्ति को जगाने और मौलिक अभिपत्रों के प्रकाशन के लक्ष्य को सामने रखकर उक्त समिति की स्थापना सर आशुतोष ने की

थी, जिसमें वह सफल भी रहे। प्रो.पी.एस.मैकमोहन और प्रो. साइमंसन के प्रयासों से 1914 में इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन की स्थापना हुई। भारतीय विज्ञान कांग्रेस देश का सबसे बड़ा एवं लोकप्रिय वैज्ञानिक संगठन है। कलकत्ता में पहली बार आयोजित वार्षिक सभा की अध्यक्षता सर आशुतोष मुखर्जी ने की थी। मात्र 135 प्रतिभागियों से आरम्भ हुई यह संस्था अब वट वृक्ष का रूप ले चुकी है, जिनके वार्षिक अधिवेशनों में देश-विदेश के विज्ञान के विविध क्षेत्रों के चार-पांच हजार वैज्ञानिक भाग लेते हैं, शोध-पत्र प्रस्तुत करते हैं और ज्ञान का आदान-प्रदान तथा विचार-विमर्श करते हैं।

रॉयल सोसायटी ऑफ लंदन, एकेडमी ऑफ साइंसेज ऑफ फ्रांस, दि नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज इन यू.एस.ए. अथवा यू.एस.एस.आर. एकेडमी ऑफ साइंसेज के पैटर्न पर भारत में साइंस एकेडमी की स्थापना करने का विचार भारतीय विज्ञान कांग्रेस के बम्बई वाले अधिवेशन (1934) में सामने आया और इस तरह नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज ऑफ इंडिया (NISI) की स्थापना 1935 में हुई। फरवरी 1970 में इसका नाम बदल कर 'इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी' (INSA) कर दिया गया। इसी एकेडमी की परिपाटी पर इलाहाबाद में 'दि नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज' इंडिया (1930) तथा बंगलौर में 'इंडियन एकेडमी ऑफ साइंस' (1934) की स्थापना हुई। इन विज्ञान अकादमियों ने देश की वैज्ञानिक प्रतिभाओं को स्थापित करने, सामने लाने में अपना योगदान तो दिया ही, साथ ही भारतीय विज्ञान में हो रही मौलिक गवेषणाओं को भी उजागर करने का श्रेयस्कर कार्य किया। इनकी स्थापना से देश में वैज्ञानिक संस्कृति पनपी, एक नई चेतना का भान हुआ। देश भर के वैज्ञानिक एक मंच पर एकत्र होते थे सो वैज्ञानिक अनुसंधान को और बल प्रदान करने हेतु सरकार पर दबाव डालने मे भी ये संस्थाएँ सहायक सिद्ध हुईं और राजनयिक भी इनकी उपेक्षा न कर सके।

सर्वेक्षण कार्य

सर्वेक्षण कार्यों के लिए भू-वैज्ञानिकों की सेवाएँ 1818 से ही ली जाती रही हैं। डब्लिन में भू-विज्ञान के तत्कालीन प्राध्यापक थामस ओल्डहम के भारत आगमन पर 1857 में भारतीय भू-विज्ञान सर्वेक्षण (Geological Survey of India) की स्थापना हुई।

भारतीय सर्वेक्षण विभाग

1800 में भारतीय प्रायद्वीप त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण की स्थापना की गई और 1818 मे उसे भारत के विशद त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण के रूप में विस्तारित किया गया। स्थलाकृतिक और राजस्व सर्वेक्षण विभागों को (1817) मिलाकर उसे सर्वेयर जनरल ऑफ इंडिया के अधीन कर दिया गया और मद्रास में एक सर्वेक्षण स्कूल की स्थापना की गई। पूर्व रूपान्तरणों के बाद ये सारी संस्थाएं त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण में मिला दी गईं (1878) और उसका नाम भारतीय सर्वेक्षण विभाग (Survey of India) कर दिया गया।

भारतीय जंतु सर्वेक्षण

1876 में एडिनबरा में जन्मे टी. एन. अननडेल 1904 में भारत आये। यहाँ पर भारतीय संग्रहालय (इंडियन म्यूजियम) के प्राकृतिक इतिहास विभाग में उनकी नियुक्ति हुई। यहाँ पर उन्होंने कठोर श्रम करके अपने कौशल का ऐसा सदुपयोग किया कि उक्त विभाग के अधीक्षक कर्नल ए.अलकुक उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। अलकुक के अवकाश के बाद डॉ. अननडेल उस विभाग के अधीक्षक बना दिये गये। शीघ्र ही उन्हें 'इंडियन म्यूजियम' कलकत्ता के जन्तु विज्ञान और भू-विज्ञान विभागों का कार्यभार सौंप दिया गया। इन विभागों के कार्य क्षेत्र का वह निरन्तर विस्तार करते रहे। कुछ ही वर्षों में यह विभाग इतना महत्वपूर्ण हो उठा कि इसने सहज ही भारत सरकार का ध्यान अपनी ओर

विलियम जोन्स

इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी (इन्सा)

इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन के बंबई अधिवेशन (जनवरी 1934) में रॉयल सोसायटी ऑफ लंदन के पैटर्न पर भारत में एक नेशनल साइंस कौंसिल की स्थापना का प्रस्ताव किया गया जो साइंस कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन (जनवरी 1935) में निर्विरोध स्वीकृत हो गया और इस तरह 1935 में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज ऑफ इंडिया (NISI) की आधारशिला निर्मित हुई। एकेडमी की प्रथम बैठक साइंस कांग्रेस के महाध्यक्ष डॉ. जे.एच.हटन की अध्यक्षता में 7 जनवरी 1935 को हुई।

पहले इसका प्रधान कार्यालय कलकत्ते में था जो मई 1946 में दिल्ली स्थांतरित कर दिया गया। एकेडमी के भवन की आधारशिला अप्रैल 1948 में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने रखी।

फरवरी 1970 में इसका नाम परिवर्तित करके 'इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी' (INSA) कर दिया गया। इस अकादमी की राष्ट्र ही नहीं अपितु विदेशों में भी बड़ी प्रतिष्ठा है।

खींचा। 1916 में डॉ.अननडेल ने भारत सरकार को इस बात के लिए राजी कर लिया कि उक्त विभाग को प्रोन्नत किया जाय और इसका नाम 'भारतीय जन्तु सर्वेक्षण' (Zoological Survey of India) रखा जाय। भारत सरकार ने डॉ. अननडेल का परामर्श माना ही नहीं, अपितु उसे कार्य रूप में परिणत भी कर दिखाया और इस तरह 1916 में कलकत्ते में 'भारतीय जन्तु सर्वेक्षण' की स्थापना हुई। निस्संदेह डॉ. अननडेल इसके प्रथम निदेशक थे।

वस्तुतः भारत में प्राणि विज्ञानीय अनुसंधान 1841 से आरम्भ हुए, जब एशियाटिक सोसायटी म्यूजियम के क्यूरेटर के पद पर एडवर्थ ब्लिथ की नियुक्ति हुई। इनके बाद ब्लिथ के उत्तराधिकारी जह्न एंडरसन को 1866 में इंडियन म्यूजियम का अधीक्षक बनाया गया और प्राणि विज्ञान तथा नृ-विज्ञानी (Anthopological) संग्रह एंडरसन के अधीन कर दिये गये।

क्रमशः जे. वुडमैसन, ए डब्ल्यू अलकुक और अननडेल के मार्गदर्शन में महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य किये गये। आगे चलकर वहाँ से 'रिकार्ड्स' और 'मेमायर्स ऑफ इंडियन म्यूजियम' नामक प्रकाशन भी आरम्भ किये गये। इन शोध पत्रिकाओं से देश में प्राणि विज्ञान संबंधी अनुसंधान को बहुत प्रोत्साहन और बल मिला। डॉ.अननडेल के ही प्रयासों का यह सुफल था कि 1916 में म्यूजियम के प्राणि विज्ञान और नृ-विज्ञान खंडों को भारतीय जन्तु सर्वेक्षण के रूप में प्रोन्नत किया गया, जो कि आज देश की सर्वोच्च वैज्ञानिक संस्था है।

भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण

1788 में बोटेनिकल गार्डेन्स (कलकत्ता) की स्थापना के बाद से ही भारत में व्यवस्थित रूप से वानस्पतिक अनुसंधान कार्य आरम्भ हो सके, यद्यपि अरसा पूर्व सर जोन्स, जान फ्लेमिंग (Catalogue of Indian Medicinal Plants and Drugs,1810), नस्लीज (Materia Medica) तथा राक्स बर्ग (फ्लोरा इंडिका) आदि ने वानस्पतिक सर्वेक्षण का कार्य आरम्भ कर दिया था।

1890 में भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण (Botanical Survey of India) की स्थापना हुई। सर जार्ज किंग इसके प्रथम निदेशक थे। सर्वेक्षण ने अपना कार्य दो एककों में आरम्भ किया। औद्योगिक खंड में इंडियन म्यूजियम और वर्गिकी विभाग (Systematics) तथा दूसरे एकक में बोटेनिकल गार्डेन्स था। आजकल दोनों सर्वेक्षणों को पर्यावरण विभाग से सम्बद्ध कर दिया गया है। दोनों सर्वेक्षण पर्यावरणीय जन शिक्षा और संरक्षण के प्रयास में संलग्न हैं।

❑❑❑

अज्ञेय का शुकदेव प्रसाद के नाम पत्र

सच्चिदानन्द वात्स्यायन
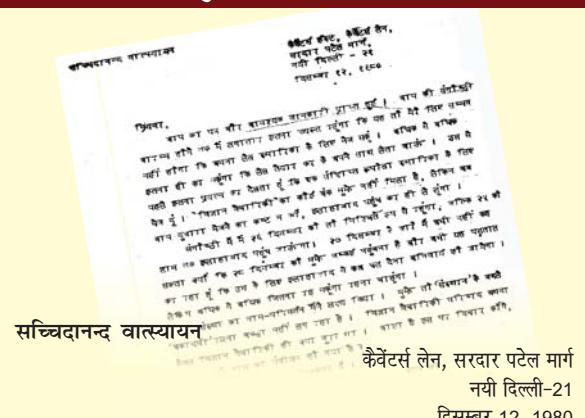
कैवेंटर्स लेन, सरदार पटेल मार्ग
नयी दिल्ली-21
दिसम्बर 12, 1980

प्रियवर,

आपका पत्र और आवश्यक जानकारी प्राप्त हुई। आपकी संगोष्ठी आरम्भ होने तक मैं लगातार इतना व्यस्त रहूँगा कि यह तो मेरे लिए सम्भव नहीं होगा कि अपना लेख स्मारिका के लिए भेज सकूं। अधिक से अधिक इतना ही कर सकूंगा कि लेख तैयार कर के अपने साथ लेता आऊँ। उससे पहले इतना प्रयत्न कर देखता हूँ कि एक संक्षिप्त रूपरेखा स्मारिका के लिए भेज दूँ। 'विज्ञान वैचारिकी' का कोई अंक मुझे नहीं मिला है, लेकिन अब आप दुबारा भेजने का कष्ट न करें, इलाहाबाद पहुँच कर ही ले लूँगा।

संगोष्ठी में मैं 26 दिसम्बर को तो निश्चित रूप से रहूंगा, बल्कि 25 को शाम तक इलाहाबाद पहुँच जाऊँगा। 27 दिसम्बर के बारे में अभी नहीं कह सकता क्योंकि 28 दिसम्बर को मुझे बम्बई पहुँचना है और अभी यह पड़ताल कर रहा हूँ कि उस के लिए इलाहाबाद से कब चल देना अनिवार्य हो जायेगा। लेकिन अधिक से अधिक जितना रह सकूँगा रहना चाहूँगा।

संस्था का नाम-परिवर्तन मैंने लक्ष्य किया। मुझे तो 'संस्थान' के बदले 'अकादमी' रखना अच्छा नहीं लग रहा है। विज्ञान वैचारिकी परिषद अथवा केवल विज्ञान वैचारिकी ही क्या बुरा था। आशा है इस पर विचार करेंगे, या कि नये नाम का पंजीयन हो गया है?

बधुजनों को सादर नमस्कार दें।

पुनश्च : 27 दिसम्बर को भी रहूँगा।

आपका

(सच्चिदानन्द वात्स्यायन)

डॉ. शुकदेव प्रसाद,
विज्ञान वैचारिकी, 34, एलनगंज
इलाहाबाद

विज्ञान और प्रौद्योगिकी गाँधी की दृष्टि में

शुकदेव प्रसाद विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में गाँधी ने जो विचार रखे हैं, उनके सम्बन्ध में तरह-तरह की भ्रान्तियां फैली हुई हैं। यंत्रों के सम्बन्ध में उनकी जो मूल परिकल्पना है, उसकी जानकारी के अभाव में लोग उन पर तरह-तरह के बेबुनियाद आरोप और आक्षेप लगाते नहीं थकते हैं; उदाहरणार्थ, गाँधी दकियानूसी थे, वे सभी तरह की मशीनों के घोर विरोधी थे, वे मानव जाति को आदि युग में ले जाना चाहते थे। इसके विपरीत विज्ञान, प्रौद्योगिकी और विकास के विषय में उन्होंने जो विचार रखे हैं, सर्वथा मौलिक, क्रान्तिकारी और प्रासंगिक हैं।

गाँधी निश्चित रूप से उन सभी प्रविधियों के खिलाफ थे, जिनसे चंद हाथों में सत्ता, स्वामित्व और पूँजी का संकेन्द्रण होता है। जिन यंत्रों से उत्पादन और वितरण में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है, उन सारे यंत्रों के बहिष्कार की वकालत गाँधी दर्शन में अवश्य है। जिन मशीनों में व्यापक जन समुदाय रोजगार प्राप्त करने से वंचित रह जाता है, उन सारी मशीनों को गाँधी द्वारा परिकल्पित सामाजिक आर्थिक ढांके में कोई स्थान नहीं है। जिन मशीनों का गाँधी द्वारा परिकल्पित सामाजिक आर्थिक ढांचे में कोई स्थान नहीं है। जिन मशीनों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया से मानवीय तत्व का बराबर विलोपन हो रहा है तथा जो शोषण तंत्र की राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर टिकाये रखने में लगी हैं, उन सारी मशीनों का गाँधी ने मुखर विरोध किया है।

गाँधी कुछ लोगों द्वारा उत्पादन (Centralised Mass Production) के स्थान पर सबके द्वारा उत्पादन (Production by the Masses) के नये मानवीय अर्थशास्त्र के जनक थे। केंद्रित उत्पादन बड़ी-बड़ी इकाइयों में पूँजी-सघन और जटिल तकनीकों के जरिये होता है। इतना ही नहीं, इस पद्धति में तकनीक उत्तरोत्तर जटिल होती जाती है और मानवीय तत्व क्रमशः लुप्त होता जाता है।

केन्द्रित उत्पादन प्रणाली में घुमाव-फिराव वाली चक्करदार पेंचीदी विचरण व्यवस्था होती है। पूँजी बहुत उत्पाद के कारण सतत एक शक्तिशाली अल्प जनतंत्र की जड़ें मजबूत और गहरी होती जाती हैं, चंद हाथों में स्वामित्व सिमटता जाता है, पूँजी का संचय या एकत्रीकरण जारी रहता है, जिसके परिणाम स्वरूप वही मुट्ठी भर लोग प्रत्यक्ष रूप से राजसत्ता का नियमन, नियंत्रण और संचालन करने लग जाते हैं, बेकाबू मशीनीकरण, मानव श्रम की बचत करने वाले वृहदाकार यंत्रों की बढ़ोत्तरी और अंधाधुंध औद्योगिकी के कारण व्यापक जन समुदाय भीषण बेरोजगारी के दुष्चक्र में फंसता जाता है, जिससे आम जनता की लाचारी, गुलामी और दरिद्रता बढ़ती जाती है। पूँजीवादी मशीनीकृत उत्पादन यंत्र में साम्राज्यवाद की विकरालता नित नये रूपों में प्रकट होती है। जन-समुदाय द्वारा उत्पादन ---- गाँधी छोटी-छोटी इकाइयों में जन-समुदाय द्वारा उत्पादन पर जोर देते थे जिसमें उत्पादन मुख्यतः स्थानीय संसाधनों से व स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए श्रम सघन (Labour-intensive) मशीनों के द्वारा होगा। उत्पादन सबके लिए हो अर्थात् पूरी पड़ोसी आबादी के लिए हो-गाँधी का यही क्रान्तिकारी विचार उनके मानव केन्द्रित अर्थशास्त्र के मूल में है। छोटी-छोटी इकाइयों में, प्रत्यक्ष पड़ोसी समुदायों (Face to face Communities) में उत्पादन और वितरण सहगामी होंगे। इस तरह विकेन्द्रित अर्थरचना में मनुष्य की

अभिक्रम शक्ति, क्रियाशीलता और स्वाधीनता का विकास होता जायेगा, जिसमें वह अपनी सारी व्यवस्थाओं का नियमन करने लग जायेगा।

गाँधी द्वारा परिकल्पित सारी समाज रचना का केन्द्र बिन्दु मानव है। गाँधी यह कतई नहीं चाहते थे कि निर्जीव मशीनें जिन्दा मशीनों (लोगों) का स्थान ले लें। जिस देश में विपुल श्रम शक्ति बेकार पड़ी हो, वहां पर श्रम की बचत करने वाले पूँजी सघन यंत्रों की क्या आवश्यकता है? गाँधी ने बारम्बार इस बात पर जोर दिया है कि मशीनें मनुष्य का स्थान न लें, बल्कि उन्हें श्रम करने या रोजगार के अवसर से वंचित न रखते हुए उनके शारीरिक श्रम को हल्का करें। उदाहरण के तौर पर गाँधी के कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

गाँधी इस प्रकार उन सीधी-सादी सहज मशीनों को चाहते थे, जो स्थानिक जन-समुदायों में सर्वसुलभ हों। लेकिन, वे वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी विकास के रंचमात्र विरोधी नहीं थे। उनका कहना सिर्फ यही था कि इसका लाभ चंद हाथों में सिमट कर न रह जाए, बल्कि वह जन-जन तक निर्बाध रूप में पहुँचे।

- 'तकनीक का अपना स्थान है और अब इसने अपने पांव भी जमा लिये हैं। किन्तु जिस हद तक शरीर श्रम अनिवार्य है, उस हद तक तकनीक को श्रम का स्थान नहीं लेने देना चाहिए।'

- **'यंग इंडिया', 5 नवम्बर, 1925**

'तकनीक का उपयोग वहीं पर उचित है, जहां तक उससे सबका हित हो।'

- **'यंग इंडिया', 15 अप्रैल, 1926**

"मैं समूची विध्वंसात्मक मशीनरी के सर्वथा खिलाफ हूँ। परन्तु ऐसे साधारण कल पुर्जी या औजारों, उपकरणों और ऐसी मशीनरी का मैं अवश्य स्वागत करूंगा जो जन-जन के (अनावश्यक, बोझिल, उबाऊ) शरीर श्रम को बचत करते हैं और झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों का बोझ हल्का करते हैं'

- **'यंग इंडिया', 17 जून, 1926**

मशीनीकरण

यहां पर मशीनों के सम्बन्ध में एक समाजवादी सज्जन की गाँधी से हुई बातचीत का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा

'मशीनों के पक्ष समाजवादी मित्र ने गाँधी से पूछा- 'क्या ग्रामोद्योग आन्दोलन का लक्ष्य मशीन मात्र को ही निकाल बाहर करना नहीं है?'

गाँधी उस समय चरखा चला रहे थे। उन्होंने खुद ही समाजवादी मित्र से प्रतिप्रश्न किया 'यह चरखा मशीन नहीं है क्या?'
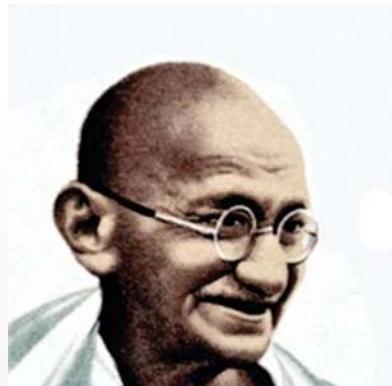
समाजवादी सज्जन ने गाँधी से कहा- 'मैं इस मशीन की बात नहीं करता, मेरा मतलब तो बड़ी-बड़ी मशीनों से है।'

इस पर गाँधी ने जो उत्तर दिया, वह मशीनरी सम्बन्धी उनके विचारों का एकदम खुलासा करता है- 'जो मशीनें व्यापक जन-समुदाय को श्रम करने के अवसर से वंचित नहीं करतीं, बल्कि जो व्यक्ति को उसके शरीर श्रम में मदद देती हैं और उसकी कार्य क्षमता को बढ़ाती हैं और जिन मशीनों को मनुष्य उनका गुलाम हुए बिना अपनी इच्छा से चला सकता हैं, उन सब मशीनों को ग्रामोद्योग आन्दोलन से अभयदान दे रखा है।'

- **'हरिजन', 22 जून, 1935**

एक अन्य स्थान पर भी गाँधी ने यही बात प्रकारान्तर से दुहरायी है 'मशीनीकरण उसी अवस्था में अच्छा है, जब किसी निर्धारित काम को पूरा करने के लिए आदमी बहुत ही कम हों। वहां यह एक बुराई है, जहाँ पर किसी काम को करने के लिए जितने आदमी चाहिए, उनसे भी कहीं अधिक लोग बेकार पड़े हुए हों, जैसा कि यह हिन्दुस्तान में तो है ही।'

- **'हरिजन', 14 नवंबर, 1934**

गाँधी इस प्रकार उन सीधी-सादी सहज मशीनों को चाहते थे, जो स्थानिक जन-समुदायों में सर्वसुलभ हों। लेकिन, वे वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी विकास के रंचमात्र विरोधी नहीं थे। उनका कहना सिर्फ यही था कि इसका लाभ चंद हाथों में सिमट कर न रह जाए, बल्कि वह जन-जन तक निर्बाध रूप में पहुंचे। उन्हीं के शब्दों में

- 'यदि गांव-गांव में, घर-घर में हम बिजली दे सकते हैं, तो गाँव वाले अपने औजारों को बिजली से चलाएं। परन्तु ऐसी अवस्था में ग्राम पंचायतों या राज्य उन बिजली घरों के मालिक होंगे, जैसे गांव के चरागाहों का स्वामित्व गांव का होता है

- **'हरिजन' 22 जून, 1935**

गाँधी बड़ी मशीनरी की अनिवार्यता को एकदम नहीं नकार देते थे। वे यह मानते थे कि निश्चित रूप से कुछ बड़े उद्योग होंगे, जो अनिवार्यतः केन्द्रित होंगे और उनमें भारी मशीनरी बहुतायत में इस्तेमाल होगी। हालांकि ऐसे उद्योगों की

चर्चा उन्होंने विस्तार में नहीं की है, फिर भी वे उन्हें कुंजी उद्योगों (Key industries) के नाम से पुकारते थे। उनका कहना था कि ये भारी उद्योग हमारी अर्थरचना के न्यूनतम अंग ही होंगे अर्थात् इनका स्थान प्रमुख न होकर, गौण ही रहेगा। लेकिन, इन पर नियंत्रण या स्वामित्व राज्य या समुदाय का होगा। यहां यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है कि दैनन्दिन उपभोग की वस्तुएं भारी उद्योग नहीं उत्पादित कर सकेंगे। बुनियादी जरूरतों की चीजें स्थानिक प्रत्यक्ष समुदायों की छोटी-छोटी इकाइयों द्वारा उत्पादित होंगी। श्रम सघन तकनीक अपनाने के कारण लोग इन इकाइयों की उत्पादन प्रक्रिया में भागीदार होंगे तथा उत्पादन, वितरण व प्रशासन का विकेन्द्रीकरण होता जाएगा। भारी मशीनरी के बारे में गाँधी के विचार हैं-

'सार्वजनिक उपयोग की ऐसी बड़ी मशीनों का भी अपना अनिवार्य स्थान है, जिन्हें मनुष्य के हाथ की मेहनत से नहीं चलाया जा सकता है। लेकिन ऐसी मशीनों पर सरकार का नियंत्रण रहेगा।'

– 'हरिजन', '22 जून, 1935

गाँधी की दृष्टि से मशीनों से पैदा होने वाली बुराइयों की कोई सीमा नहीं है। ये करोड़ों-करोड़ लोगों का स्वत्व छीनकर भौतिक शक्ति और सम्पत्ति का भारी केन्द्रीयकरण करती हैं। करोड़ों लोगों का रक्तदोहन कर उनके झोपड़ों से काफी दूरी पर स्थित बड़े-बड़े उद्योगों का पेट भरने का काम ये मशीनें कर रही हैं। उत्पादन के सारे साधनों, कल-कारखानों और मिलों या औद्योगिक प्रतिष्ठानों का अन्तिम और वास्तविक नियंत्रण और स्वामित्व जिन चंद हाथों में है, उनकी संख्या पूरी जनसंख्या की तुलना में प्रायः नगण्य-सी है। इसका नतीजा एक ओर तो सम्पत्ति संचय, राज सत्ता और अपरिमित भौतिक शक्ति की मायापुरी है और दूसरी ओर आम लोगों के लिए न तो काम है, न दाम है और न आराम है। यही कारण है कि गाँधी, मशीनों के लिए पागलपन की हद तक जो ललक है, उसके घोर विरोधी थे, खुद मशीन के कतई नहीं। मशीनों के लिए जो विवेकान्ध चूहा-दौड़ चल रहा है, वह आखिर किसलिए? वह तो मानव की श्रमशक्ति बचाने के लिए ही है न। इस संदर्भ में गाँधी का कथन है-

'लोग इस श्रम शक्ति को बचाने की धुन में यहां तक आगे बढ़ जाते हैं कि हजारों लोग बेकार होकर खुली सड़कों पर पड़कर भूखों मरने लग जाते हैं। मैं समय और श्रम दोनों की बचत करना चाहता हूँ, लेकिन मानव जाति के किसी एक अंश के लिए नहीं, वरन् सबके लिए। मैं चाहता हूँ कि पूँजी का संचय चंद हाथों में न रहकर, सभी हाथों में हो। मशीन आज केवल कुछ व्यक्तियों को लाखों लोगों की पीठ पर सवार होने में सहायता पहुँचती है। इन सबके पीछे मेहनत बचाने की कल्याण भावना नहीं, वरन् लालच है। अपनी समस्त शक्ति से इस व्यवस्था के विरोध में मैं लड़ रहा हूँ। मशीनों को मनुष्य की हडिड्यां चूसने का काम नहीं करने देना है।'
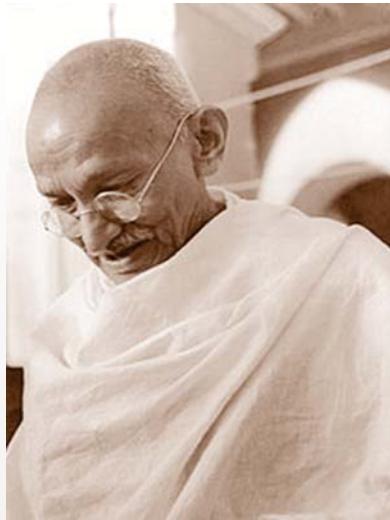
– 'यंग इंडिया', 13 नवंबर, 1924

गाँधी यंत्रकला के विकास के विरोधी कतई नहीं थे। उनका विरोध सिर्फ वहीं था, जहां उच्च तकनीक लोगों को स्वाश्रयी और आत्म निर्भर बनने से रोकती है। बड़ी-बड़ी मशीनों से बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था और स्वार्थपूर्ण स्पर्धा की समस्यायें उठ खड़ी होती हैं, जिससे निमर्म शोषण और साम्राज्यवाद को बढ़ावा मिलता है। गाँधी का मानना है- 'बड़े पैमाने पर औद्योगीरण किये जाने का परिणाम यह होगा कि होड़ और बाजार की समस्यायें पैदा होंगी। इनके फलस्वरूप गांव वालों का किसी न किसी रूप में शोषण किया जायेगा। इसलिए हमें इस बात को ध्यान में रखकर चलना है कि गांव आत्मनिर्भर हों और अपनी जरूरत का सामान मुख्यतः वहीं तैयार कर लें। यदि ग्रामोद्योगों का यह स्वरूप कायम रखा जाए, तो फिर इस पर कोई आपत्ति नहीं है कि गांव वाले आधुनिक प्रौद्योगिकी और उपस्करों का प्रयोग करें- ऐसे यंत्रोपकरणों का, जो वे आसानी से प्राप्त कर सकें और स्वयं बना सकें। शर्त यह ही कै इन यंत्रों का उपयोग दूसरों का शोषण करने के लिए नहीं होना चाहिए।'

– 'हरिजन', 29 अगस्त, 1936

इन ढेर सारे उदाहरणों के प्रकाश में अब यह स्पष्ट हो चुका है कि गाँधी मशीन, मनुष्य और प्रकृति के बीच स्वस्थ सम्बन्ध कायम करना चाहते थे। मशीनें मनुष्य की साथी-संगी हों, उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि करें और उसे ऊब व उकताहट पैदा करने वाले बोझिल श्रम से बचायें। जहाँ लोग रह रहे हैं, वहीं उन्हें रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हों, इसके लिए उन्हें बड़े-बड़े शहरों की तरफ न भागना पड़े। जहां लोग रह रहे हैं, वहीं उनकी छोटी-छोटी कर्मशालायें हों, जिनमें छोटी-छोटी मशीनें लगी हों। ये कर्मशालायें उनकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हों।

❑❑❑

Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/20-22
R.N.I. No. 51966/1989, ISSN 2455-2399
ELECTRONIKI AAPKE LIYE : JULY 2022